ARTICLES

Published in newspapers

जीन संशोधित चावल का सच

रमन त्यागी

चावल भू-मंडलीय भोजन सुरक्षा में केंद्रीय भूमिका अदा करता है। दुनिया की लगभग आधी आबादी मुख्य भोजन के रूप में चावल खाती है। इस समय विश्व में जो भुखमरी की समस्या पैदा हो रही है उसका सबसे बड़ा कारण है कि विश्व में चावल की पैदावार घट रही है तथा आबादी बढ़ रही है। ऐसे में जीन संशोधित चावल को समाधान के रूप में पेश किया जा रहा है। भारत में भी निजी व सार्वजनिक स्तर पर शोध संस्थाओं द्वारा विभिन्न गुणों वाले जीन संशोधित चावल उत्पादित करने की परियोजनाएं प्रारंभ की गई है। सुनहरे चावल के बारे में पहले ही लोग जान चुके हैं। अब फफूंद के रोग से लड़ने वाली किस्म तैयार की जा रही है। कई शोधकर्ता चावल के स्टार्च की गुणवत्ता को बदलने की कोशिश में लगे हैं और एक निजी कंपनी तो ऐसा चावल तैयार करने जा रही है जिसमें बीटी का सी जीन होगा। गौरतलब है कि यह जीन स्टार लिंक के मक्का में इस्तेमाल किया जाता है। आशंका है कि इस जीन में एलर्जी पैदा करने वाले गुण हैं और इसीलिए यूएसडीए ने इसके मानवीय उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है।

जीन संशोधित चावल उगाने में बहुत खतरा है। इस बात को देखते हुए बुनियादी सवाल यह है कि क्या भारत को, जो चावल और उसकी विविध किस्मों को जन्म देने वाला मुख्य केंद्र रहा है, जीन-संशोधित चावल उगाने की इजाजत देनी चाहिए। मैक्सिको मक्का और उसकी विविध किस्में पैदा करने वाला केंद्र रहा है। उसकी बिल्कुल स्पष्ट नीति है। उसने न केवल जीन संशोधित मक्का उगाने बल्कि जीन संशोधित मक्का के बारे में शोध करने पर भी पाबंदी लगा दी है। मैक्सिको ने मक्का के प्राकृतिक जीन भंडार को सुरक्षित करने के लिए ऐसा किया है। मक्का भी संसार में बहुत जगहों पर मुख्य भोजन के रूप में खाया जाता है। इसका मतलब यह हुआ है कि चावल की सबसे ज्यादा किस्में और उनसे जुड़े जीन भारत में ही पाए जाते हैं। खासकर उड़ीसा के जैपूर इलाके और झारखंड तथा छत्तीसगढ़ से गुजराती पट्टी के अलावा उत्तर पूर्व में। जिन जगहों पर भी कोई फसल मूल रूप में जन्मी थीं, वहां उसके जीन संशोधित संस्करणों को इसलिए जोखिम भरा समझा जाता है कि उन फसलों के प्राकृतिक जीन भंडार के जीन संशोधित फसलों के संपर्क में आने पर नतीजे बहुत खतरनाक हो सकते हैं।

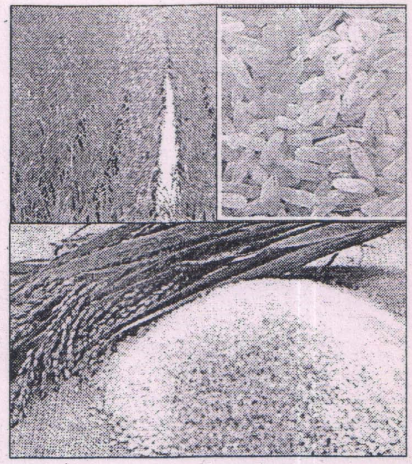

कृषि जैव प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने वाले वैज्ञानिकों की दलील है कि चावल स्वयं अपना परागण करने वाली फसल है और इसलिए वह बाहर के परागों और जीन को अपने संपर्क में नहीं आने देगी। लेकिन चीन और अमेरिका से हाल ही में आने वाली रपटें बताती हैं कि जीन संशोधित चावल और दूसरे चावलों के बीच जीन का लेन देन बहुत अधिक है, जो कि चिंता पैदा करता है। प्रयोग यह भी दर्शाते हैं कि शाकनाशियों को बर्दाश्त कर सकने वाले जीन मूल नस्लों तक जा पहुंचते हैं और ऐसी जंगली प्रजातियां पैदा करते हैं जिन पर नियंत्रण पाना कठिन होता है। इसके अलावा अन्य अध्ययन भी हैं जो दर्शाते हैं कि जेनेटिक इंजीनियरिंग की प्रक्रिया द्वारा विदेशी जीन का लाया जाना विदेशी जीन द्वारा संक्रमित पौधे में जीन साइलेंसिंग या मूल जीन को निष्क्रिय कर देता है। इसका मतलब है कि मूल किस्म के पौधे की कुछ जीन खामोश या निष्क्रिय हो जाती है और वह फसल नहीं देती, जो उन्हें प्राकृतिक रूप में देनी चाहिए। अगर मूल जीन के भंडार से विदेशी जीन का संपर्क लापरवाह वैज्ञानिकों के द्वारा कराया गया हो, तो मूल जीन के निष्क्रिय या खामोश होने के बहुत गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

किसी भी फसल के लंबे समय तक जिंदा रहने के लिए जैविक विविधता निर्णायक होती है। इसलिए जीन संशोधन के काम में सावधानी ही केंद्रीय सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार अगर आपको नतीजों के बारे में ठीक से नहीं मालूम है तो ज्यादा बेहतर यही होगा कि आप इस मामले में आगे नहीं बढ़ें। कृषि जैव प्रौद्योगिकी के पैरोकारों का कहना है कि इस तरह डाटा इकट्ठा करने में बरसों लग सकते हैं। बहरहाल शोध की कुछ अन्य दिशाएं जीन संशोधित फसलों के मुकाबले ज्यादा बेहतर और उम्मीद भरे नतीजे दे रही हैं।

(लेखक नीर फाउंडेशन के निदेशक हैं)

भारत में निजी व सार्वजनिक स्तर पर शोध संस्थाओं द्वारा विभिन्न जीन संशोधित चावल उत्पादित करने की परियोजनाएं प्रारंभ की गई है। सुनहरे चावल के बाद अब फफूंद के रोग से लड़ने वाली किस्म तैयार की जा रही है।

विश्व में जो भुखमरी की समस्या आज पैदा हो रही है उसका सबसे बड़ा कारण है कि विश्व में चावल की पैदावार घट रही है तथा आबादी बढ़ रही है।

पानी की होगी पहचान

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के प्रति बढ़ती सरकार की सक्रियता और समाज की जागरूकता रंग ला रही है। इन संसाधनों के मामले में फिर धनी होने की ओर हम अग्रसर हैं। आने वाला नया साल इस दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है।

जल संरक्षण

जिस प्रकार से भारत के विभिन्न भागों में प्रति वर्ष पानी का संकट बढ़ता जा रहा है उसे देखते हुए समाज व सरकार दोनों स्तरों से सामूहिक पहल अति आवश्यक है। पानी की चिंता अगर सरकार ही करेगी तो यह संकट निरंतर गहराता ही जाएगा लेकिन अगर समाज भी सरकार के साथ तालमेल बैठाकर अपनी जिम्मेदारी को समझेगा तो भारत इस विकराल समस्या के मूल में पहुंचकर उसका समाधान कर सकने में सफल होगा। पानी की कमी को वर्षा जल का संरक्षण करके तथा उसके उपयोग में किफायत बरत कर किसी हद तक दूर किया जा सकता है लेकिन उसके प्रदूषण से पार पाना एक कठिन समस्या है।

नदीपुत्र रमनकान्त त्यागी
संस्थापक, नीर फाउंडेशन

ऐसे हालात में साल 2021 हमारे सामने पानी के संबंध में चुनौतियों और संभावनाओं दोनों का वर्ष बन सकता है। हमारे सामने भारत सरकार की महत्वाकांक्षी योजना 'हर घर को नल से जल' एक चुनौती के रूप में है। यह कठिन कार्य तब तक स्थाई समाधान का माध्यम नहीं बन सकता है जब तक कि हम समस्या के स्थान पर ही उसका समाधान नहीं करेंगे। आज अगर बुंदेलखंड या लातूर जैसे क्षेत्रों में पानी की कमी है तो हमें उसका समाधान वहीं खोजना होगा जोकि स्थाई भी होगा। पानी के संकट से उबरने के लिए हमें दो स्तरों से कार्य करना होगा। एक तो पानी का अधिकाधिक संरक्षण व दूसरा उसके उपयोग में कंजूसी बरतना। पानी की कमी व उसके प्रदूषण का सीधा व सरल समाधान हमें प्रतिवर्ष मिलने वाले बारिश के पानी में छुपा है। हमें इन वर्षा की बूंदों को सलीके से संजोकर या तो धरती के गर्भ में भेजना है या सूर्य की किरणों से बचाकर महफूज रखना है। वर्षा जल को संजोने के लिए भारत के प्रत्येक राज्य में प्राकृतिक संरचनाएं (तालाब, जोहड़, आहरपाइन, कुंडी जैसे स्रोत) पहले से मौजूद हैं। समय की मार ने इन संरचनाओं को जीर्ण-शीर्ण कर दिया है। हमें इन प्राकृतिक जलस्रोतों को पुनर्जीवित करके वर्षाजल को इनमें भेजने का पुख्ता इंतजाम करना है। दैनिक उपयोग, उद्योग व कृषि में खपत कम करने के लिए हमें समाज की अपनी पुरातन परंपराओं और तरीकों पर फिर से जाना होगा। सरकार को भी इसमें सख्ती दिखाते हुए कानून बनाकर उनको अमल में लाना होगा। अगर हम पानी का सही संरक्षण व उसका मितव्ययी उपयोग सीख गए तो नया साल पानी के क्षेत्र में खुशियों की फुहार सरीखा साबित होगा।

पानी रे पानी : तेरा समाधान क्या

NEER FOUNDATION

रमन कान्त
(लेखक नीर फाउंडेशन के निदेशक हैं)

जीवन का पालना कहा जाने वाला पानी आज अपनी स्थिति पर आंसू बहा रहा है। पानी के लिए संघर्ष बढ़ते जा रहे हैं। पिछले दिनों पानी के झगड़े में सहारनपुर के एक गांव में दंबगों ने दूसरे परिवार के पांच लोगों को मरणासन्न स्थिति में पहुंचा दिया। प्याऊ लगाकर पानी पिलाने वाली संस्कृति का देश आज कैम्पर, बोतल, पाउच व टैंकर आदि माध्यम से पानी खरीद रहा है। हालात गांवों में भी बदतर हो चले हैं। यहां भी तेजी से पानी बाजार बना रहे हैं।

यह परम सत्य है कि इस जगत के हर एक प्राणी के लिए पानी ही जीवन का आधार है। वर्तमान समय में पानी में बढ़ते प्रदूषण के कारण 80 प्रतिशत बीमारियां जल-जनित होने लगी हैं। विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार विश्व में प्रति वर्ष 50 लाख लोग जल-जनित बीमारियों के कारण काल का ग्रास बनते हैं। सूखे ने विकराल रूप अख्तियार कर लिया है। पानी न मिलने के कारण लोग पलायन के लिए मजबूर हैं। कुछ परिवार पानी या मौत मांग रहे हैं। पिछले वर्ष जहां भारत का पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण शहर शिमला पानी की कमी से जूझता दिखा तो वहीं दक्षिण अफ्रीका का सम्पन्न शहर केपटाउन का पानी समाप्त होने पर वहां आपातकाल जैसे हालात बन गए थे।

इस समय भारत सहित विश्व के अधिकतर देशों के सामने पानी से संबंधित दो समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। पहली पानी की कमी व दूसरी उसका प्रदूषण। भूजल प्रदूषण के कारणों में बेलगाम उद्योगों का तरल गैर-शोधित कचरा, बेतरतीब कस्बों व शहरों का गैर-शोधित तरल कचरा प्रमुख हैं। उद्योगों व शहर-कस्बों ने नदियों को प्रदूषित किया और नदियों ने भूजल को। यही कारण रहा कि जो समाज कभी शीतल-निर्मल जल की अधिकता के कारण नदियों के किनारे बसा-पला-बढ़ा और विकसित हुआ वह आज वहां से उजड़ने के कगार पर खड़ा है।

कड़वी सच्चाई है कि पानी का अगर हम प्राकृतिक संरक्षण बनाए रखते, बना लें या फिर बनाए रखने का प्रयास करें तो हमें पानी की कमी शायद ही खले। हमारी गलतियों का ही परिणाम है कि देश के कुछ क्षेत्रों में भू-जल का स्तर 1500 फीट की गहराई तक खिसक चुका है। आधुनिकीकरण के नाम पर विकसित हुए गुरुग्राम का भूजल स्तर पिछले 20 वर्षों में 16 मीटर नीचे खिसक चुका है तथा प्रतिवर्ष डेढ़ मीटर की दर से गिरता जा रहा है। गंगा व यमुना के बीच बसा पश्चिमी उत्तर प्रदेश भी आज पानी की कमी से जूझ रहा है। देश की राजधानी दिल्ली में 21वीं शताब्दी की सब कुछ वस्तुएं उपलब्ध हैं लेकिन पीने के लिए अपना पानी नहीं है। दिल्ली प्यास बुझाने के लिए उत्तर प्रदेश व हरियाणा से पानी मांग रही है। पानी को संग्रहित करने के पुराने तौर-तरीके तालाब, जोहड़, बावड़ी, कुन्डी, आहर पाइन व झीलें आदि हमने स्वार्थवश समाप्त कर दिए हैं। भारत सरकार ने वर्ष 2024 तक देश के प्रत्येक परिवार को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके लिए स्थानीय समाधान खोजना होगा क्योंकि जिस गति से बड़ी नदियों में पानी कम हो रहा है, उससे संभव नहीं लगता कि सभी को नदियों या नहरों से पानी पहुंचाया जा सकेगा। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वर्षाजल संरक्षण की अपील की है। यही एक मात्र समाधान है। इससे ही भूजल स्तर में बढ़ोतरी होगी और भूजल प्रदूषण भी धीरे-धीरे कम होगा।

जलांदोलन की अब है जरूरत

नदीपुत्र रमन कांत
संस्थापक-नेचुरल एनवायरमेंट एजुकेशन एंड रिसर्च फाउंडेशन, मेरठ

देश के 36 लाख जलाशयों में से सिर्फ पांच प्रतिशत ही अपने मूल स्वरूप में बचे हैं। अगर सभी जलाशयों को कब्जामुक्त करके पुनर्जीवित कर दिया जाए तो देश के करीब 50 प्रतिशत भूजल संकट का समाधान संभव हो सकेगा।

विश्व के कुल भूभाग का मात्र 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल ही भारत के पास है, और दुनिया की 18 प्रतिशत आबादी निवास करती है। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक दबाव स्वाभाविक है। भारत के पास विश्व के कुल जल संसाधनों का मात्र 4 प्रतिशत ही है, उस पर खराब बात यह है कि जितना भूजल पूरा विश्व प्रतिवर्ष खींचता है उसमें 25 प्रतिशत भागीदारी अकेले भारत की है।

वर्तमान समय में 1952 के मुकाबले भारत में पानी की उपलब्धता एक तिहाई रह गई है, जबकि आबादी 36 करोड़ से बढ़कर 135 करोड़ के करीब पहुंच गई है। हालात ये हो गए हैं कि हम लगातार भूमिगत जल पर निर्भर होते जा रहे हैं। जिसके कारण भूमिगत जल प्रत्येक वर्ष औसतन एक फीट की दर से नीचे खिसक रहा है। इससे उत्तर भारत के ही करीब 15 करोड़ लोग भयंकर जल संकट से जूझ रहे हैं। भारत सरकार के जल शक्ति मंत्रालय के अध्ययन के अनुसार उद्योग व ऊर्जा क्षेत्र में कुल भूजल की मांग आज के करीब 7 प्रतिशत के मुकाबले वर्ष 2025 तक 8.5 प्रतिशत हो जाएगी जोकि वर्ष 2050 तक बढ़कर करीब 10.1 प्रतिशत हो जाएगी। कृषि में भूजल की मांग वर्ष 2010 के 77.3 प्रतिशत के मुकाबले 2050 तक घटकर 70.9 प्रतिशत ही रह जाएगी अर्थात भविष्य में जहां उद्योग व ऊर्जा में पानी की मांग बढ़ेगी व वहीं सिंचाई में घटेगी।

अब जरूरत है कि भूजल को लेने व उसे वापस लौटाने के अनुपात को हम बनाए रखें। बारिश के संरक्षण का कार्य गांवों के अंदर जहां तालाब व जोहड़ को पुनर्जीवित करके किया जा सकता है वहीं शहरों में रूफटाप वर्षाजल संरक्षण के माध्यम से ऐसा संभव है। भारत में करीब 6,64,369 गांव तथा लगभग 4000 छोटे-बड़े कस्बे-शहर मौजूद हैं। राजस्व रिकार्ड के अनुसार भारत में करीब 36 लाख जलाशय दर्ज हैं, जिनमें 30 प्रतिशत अपना अस्तित्व खो चुके हैं। शेष 95 प्रतिशत अतिक्रमण की मार झेल रहे हैं और मात्र 5 प्रतिशत ही अपने स्वरूप में बचे हुए हैं। वर्तमान में मौजूद कुल जलाशयों में से करीब 50 प्रतिशत सूखे हुए हैं और 30 प्रतिशत गंदगी से बजबजा रहे हैं। कुल मौजूद जलाशयों में से 80 प्रतिशत जलाशय अपनी जल संभरण क्षमता खो चुके हैं। देश के भूजल संकट को दूर करने के लिए सरकार व समाज दोनों को युद्ध स्तर पर प्रयास करने होंगे। इसमें जहां चुने हुए गांव प्रमुखों की महती भूमिका होगी, वहीं धार्मिक गुरूओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होगा। देश के तमाम धर्मगुरु समाज को तालाब पुनर्जीवन का संदेश दें तो संभव है कि समाज के द्वारा एक सकारात्मक जलांदोलन खड़ा हो जाए। भारत में भू-जल उपयोग के लिए कठोर कानूनों की आवश्यकता है क्योंकि यहां साफ-पीने वाला पानी ही प्रत्येक उपयोग में लाया जाता है। हमें सिंचाई, उद्योग व कुछ घरेलू कार्यों में कस्बों व शहरों से निकलने वाले सीवेज को शोधित करके इस्तेमाल करना होगा। भू-जल बचाने व संरक्षित करने में उपभोक्तावाद में कमी करनी होगी।

आबादी का कम हो बोझ

शहरों का बेतरतीब विकास रोकने के लिए रोजगार व मूलभूत सुविधाओं को दूर-दराज छोटे शहरों, कस्बों व गांवों में भी पहुंचाना होगा। गांव में आजीविका के साधन होंगे तो कोई शहर क्यों आएगा?

रमन कांत त्यागी, निदेशक, नेचुरल एनवायरमेंटल एजुकेशन एंड रिसर्च फाउंडेशन (नीर)

आजादी के 70 साल बाद भी भारत एक ऐसा शहर विकसित नहीं कर पाया है जोकि जीवन जीने के अंतरराष्ट्रीय मानकों या भारतीय मूल्यों पर खरा उतरता हो। भारत सरकार द्वारा शहरों के आधारभूत ढ़ांचे को विकसित करने के लिए प्रारंभ की गई स्मार्ट सिटी योजना के प्रथम चरण में तय प्रक्रिया के तहत चयनित किए गए सौ शहरों में अभी बहुत बड़े बदलाव देखने को नहीं मिल रहे हैं। स्मार्ट सिटी योजना में बिजली, पानी, स्वच्छता, कचरा प्रबंधन, पब्लिक परिवहन, पर्यावरणीय विकास, सुरक्षा, शिक्षा व स्वास्थ्य जैसे वही मानक तय किए गए हैं जिनके आधार पर रहने लायक शहरों की अंतरराष्ट्रीय रैंकिंग तैयार की जाती है।

भारत के शहरों में कुल आबादी की 31 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। 2030 तक शहरी आबादी के 40 प्रतिशत होने का अनुमान है। ऐसे में जब अभी बेतरतीब व्यवस्थाओं से चरमरा रहे शहर संभल नहीं पा रहे हैं तो जनसंख्या का अधिक बोझ आखिर कैसे सह पाएंगे? यहां यह विषय भी विचारणीय है कि जब शहरों पर क्षमता से अधिक जनसंख्या का दबाव बढ़ेगा तो वहां की आधारभूत आवश्यकताएं कैसे पूरी हो पाएंगी? क्योंकि दिल्ली के पास वर्तमान में अपनी आबादी की प्यास बुझाने के लिए भी पानी मौजूद नहीं है। मायानगरी मुंबई जैसा शहर प्रतिवर्ष बरसात में थम सा जाता है क्योंकि वहां सीवेज के सही निस्तारण की व्यवस्था ही नहीं है। दिल्ली जहां सर्दियों के मौसम में हांफने लगती है। वहां सांस लेना भी दूभर रहता है, लेकिन जनसंख्या का दबाव यहां बढ़ता जा रहा है। देश के चार बड़े शहरों दिल्ली, मुंबई, चेन्नई व बेंगलुरु की करीब 35 प्रतिशत आबादी झुग्गियों में रहने को मजबूर है। दिल्ली व राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र को प्रदूषण के मामले में राहत देने के लिए माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित एनवायरमेंट पॉल्यूशन (प्रिवेंशन व कंट्रोल) अथॉरिटी के भरपूर प्रयासों के बावजूद बेहतर नतीजे देखने को नहीं मिल रहे हैं।

भारत को गांव और गांधी का देश कहा जाता है। गांवों से बेहतर जीवन की तलाश में युवा वर्ग तेजी से शहरों की ओर अपना रुख कर रहा है। गांव लगातार खाली हो रहे हैं और शहरों पर दबाव बढ़ रहा है। ऐसे में अगर शहरों को स्वच्छ व सुरक्षित जीवन जीने के हिसाब से नहीं विकसित किया गया तो भारत की बड़ी आबादी बीमारी व बेकारी की चपेट में होगी। इकोनॉमिक इंटेलीजेंस यूनिट की रहने लायक शहरों की ताजा रिपोर्ट में 100 में से 99.1 अंक प्राप्त करके पहले स्थान पर पहुंच विएना शहर से सीख लेकर हमें अपने शहरों को विकसित करना होगा। उच्च दस शहरों की सूची में ऑस्ट्रेलिया के तीन मेलबर्न, सिडनी व एडिलेड हैं। सिडनी शहर अपने सस्टेनेबल सिडनी-2030 कार्यक्रम के चलते पांचवे स्थान से छलांग लगाकर तीसरे स्थान पर पहुंचा है। भारत को स्मार्ट सिटी योजना में भी इसका अनुसरण करना चाहिए।

हम दो प्रकार से अपना जीवन जी सकते हैं। एक तो गांधी दर्शन से और दूसरा विकसित देशों के साथ कंधा मिलाकर। शहरों में गांधी दर्शन के सभी मानक पूर्ण करना संभव ही नहीं है लेकिन अपने शहरों को हम विकसित देशों के शहरों की कतार में लाकर नागरिकों को बेहतर जीवन जीने का अवसर दे सकते हैं। इसके लिए हमें समयबद्ध तरीके से कार्य करने की आवश्यकता है तथा व्यवस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन भी जरूरी है।

पानी की होगी पहचान

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के प्रति बढ़ती सरकार की सक्रियता और समाज की जागरूकता रंग ला रही है। इन संसाधनों के मामले में फिर धनी होने की ओर हम अग्रसर हैं। आने वाला नया साल इस दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है।

जल संरक्षण

जिस प्रकार से भारत के विभिन्न भागों में प्रति वर्ष पानी का संकट बढ़ता जा रहा है उसे देखते हुए समाज व सरकार दोनों स्तरों से सामूहिक पहल अति आवश्यक है। पानी की चिंता अगर सरकार ही करेगी तो यह संकट निरंतर गहराता ही जाएगा लेकिन अगर समाज भी सरकार के साथ तालमेल बैठाकर अपनी जिम्मेदारी को समझेगा तो भारत इस विकराल समस्या के मूल में पहुंचकर उसका समाधान कर सकने में सफल होगा। पानी की कमी को वर्षा जल का संरक्षण करके तथा उसके उपयोग में किफायत बरत कर किसी हद तक दूर किया जा सकता है लेकिन उसके प्रदूषण से पार पाना एक कठिन समस्या है।

नदीपुत्र रमनकान्त त्यागी
संस्थापक, नीर फाउंडेशन

ऐसे हालात में साल 2021 हमारे सामने पानी के संबंध में चुनौतियों और संभावनाओं दोनों का वर्ष बन सकता है। हमारे सामने भारत सरकार की महत्वाकांक्षी योजना 'हर घर को नल से जल' एक चुनौती के रूप में है। यह कठिन कार्य तब तक स्थाई समाधान का माध्यम नहीं बन सकता है जब तक कि हम समस्या के स्थान पर ही उसका समाधान नहीं करेंगे। आज अगर बुंदेलखंड या लातूर जैसे क्षेत्रों में पानी की कमी है तो हमें उसका समाधान वहीं खोजना होगा जोकि स्थाई भी होगा। पानी के संकट से उबरने के लिए हमें दो स्तरों से कार्य करना होगा। एक तो पानी का अधिकाधिक संरक्षण व दूसरा उसके उपयोग में कंजूसी बरतना। पानी की कमी व उसके प्रदूषण का सीधा व सरल समाधान हमें प्रतिवर्ष मिलने वाले बारिश के पानी में छुपा है। हमें इन वर्षा की बूंदों को सलीके से संजोकर या तो धरती के गर्भ में भेजना है या सूर्य की किरणों से बचाकर महफूज रखना है। वर्षा जल को संजोने के लिए भारत के प्रत्येक राज्य में प्राकृतिक संरचनाएं (तालाब, जोहड़, आहरपाइन, कुंडी जैसे स्रोत) पहले से मौजूद हैं। समय की मार ने इन संरचनाओं को जीर्ण-शीर्ण कर दिया है। हमें इन प्राकृतिक जलस्रोतों को पुनर्जीवित करके वर्षाजल को इनमें भेजने का पुख्ता इंतजाम करना है। दैनिक उपयोग, उद्योग व कृषि में खपत कम करने के लिए हमें समाज की अपनी पुरातन परंपराओं और तरीकों पर फिर से जाना होगा। सरकार को भी इसमें सख्ती दिखाते हुए कानून बनाकर उनको अमल में लाना होगा। अगर हम पानी का सही संरक्षण व उसका मितव्ययी उपयोग सीख गए तो नया साल पानी के क्षेत्र में खुशियों की फुहार सरीखा साबित होगा।

रमनकांत त्यागी

नकारने से और नासूर बन जाएगी

मौसम परिवर्तन की समस्या

यूनाइटेड नेशन्स की रिपोर्ट के अनुसार अगर ग्रीन हाउस गैसों पर रोक नहीं लगाई गई तो वर्ष 2100 तक ग्लेशियरों के पिघलने के कारण समुद्र का जल स्तर 28 से 43 सेंटीमीटर तक बढ जाएगा। उस समय पृथ्वी के तापमान में भी करीब तीन डिग्री सेल्शियस की बढ़ोतरी हो चुकी होगी। ऐसी स्थितियों में सूखे क्षेत्रों में भयंकर सूखा पड़ेगा तथा पानीदार क्षेत्रों में पानी की भरमार होगी। वर्ष 2004 में नैचर पत्रिका के माध्यम से वैज्ञानिकों का एक दल पहले ही चेतावनी दे चुका है कि जलवायु परिवर्तन से इस सदी के मध्य तक पृथ्वी से जानवरों व पौधों की करीब दस लाख प्रजातियां लुप्त हो जाएंगी तथा विकासशील देशों के करोड़ों लोग भी इससे प्रभावित होंगे।

24वां कन्वेंशन ऑफ द पार्टीज अर्थात कोप-24 के माध्यम से 2 से 14 दिसंबर, 2018 तक पोलैंड के शहर काटोवाइस में जलवायु परिवर्तन की गंभीर समस्या पर चिंतन हो रहा है। इस बार का चिंतन इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस समस्या में सबसे बड़े सहभागी देश अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प द्वारा मौसम परिवर्तन की विश्वव्यापी समस्या को पहले ही नकारा जा चुका है। अमेरिका द्वारा मौसम परिवर्तन के अंतराष्ट्रीय समझौते से अपने आप को पहले ही अलग कर लिया गया है। ट्रम्प का यह फैसला सभी के लिए चौकाने वाला था। ट्रम्प के इस निर्णय से दुनियाभर के पर्यावरणविद् सकते में हैं क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी के दबाव में जब अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा के समय मौसम परिवर्तन पर अमेरिका का रूख कुछ सकारात्मक बना था, लेकिन ट्रम्प के इस निर्णय ने पूरी दुनिया को एक झटका दे दिया। अमेरिका के इस निर्णय से पेरिस समझौते में आनाकानी करते हुए जुड़े देश भी अगर अब बेलगाम हो जाएं तो कोई ताज्जुब नहीं होना चाहिए। ट्रम्प अपने चुनाव प्रचार के दौरान से ही मौसम परिवर्तन की समस्या को मात्र कुछ देशों व वैज्ञानिकों का हव्वा मानते रहे हैं, जबकि दुनिया धरती के बढ़ते तापमान से लगातार जूझ रही है। ऐसे कठिन समय में दुनिया का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति एक विश्वव्यापी समस्या को दरकिनार करके उससे अलग हो चुका है।

संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव बान की मून ने अपने पहले ही संबोधन में दुनिया को आगाह किया था कि जलवायु परिवर्तन भविष्य में युद्ध और संघर्ष की बडी वजह बन सकता है। बाद में जब संयुक्त राष्ट्र द्वारा मौसम परिवर्तन के संबंध में अपनी रिपोर्ट पेश की गई तो उससे इसकी पुष्टि भी हो गई थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव स्वर्गीय कोफी अन्नान भी मौसम परिवर्तन पर अपने पूरे कार्यकाल में चिंता जताते रहे। दुनियाभर के पर्यावरण विशेषज्ञ भी पिछले दो दशकों से चीख-चीख कर कह रहे हैं कि अगर पृथ्वी व इस पर मौजूद प्राणियों के जीवन को बचाना है तो मौसम परिवर्तन को रोकना होगा। विश्व मेट्रोलॉजिकल ऑरगेनाइजेशन व यूनाइटेड नेशन्स के पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा वर्ष 1988 में गठित की गई समिति इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज के पूर्व अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र कुमार पचौरी व अमेरिका के पूर्व उप राष्ट्रपति अल गोर को नोबल समिति द्वारा वर्ष 2007 में शांति का नोबल पुरस्कार दिए जाने से विषय की गंभीरता स्वतः ही स्पष्ट हो गई थी। लेकिन डोनाल्ड ट्रम्प द्वारा इस ज्वलंत समस्या को नकारना दुनियाभर के पर्यावरणविद्ों को चिंता में डाल रहाहै।

डोनाल्ड ट्रम्प के इस रुख से कुछ गरीब और विकासशील देशजरूर खुश होंगे जोकि अपने देश के विकास में मौसम परिवर्तन की संधि को बाधा मानकर चल रहे हैं। भारत के संदर्भ में यह देखने वाली बात होगी कि हमारी सरकार इस निर्णय को कैसे लेती है ? भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी मौसम परिवर्तन की समस्या पर गंभीर नजर आते हैं। ट्रम्प का रुख मोदी के एकदम विपरीत है। भारत की तरह ही यूरोपीय देशों को भी मौसम परिवर्तन पर अमेरिका के साथ कदम ताल मिलाने में दिक्कत जरूर आएगी।

अतीत में मौसम परिवर्तन की समस्या को लेकर जहां गरीब व विकासशील देश हमेशा ही दबाव महसूस करते रहे हैं वहीं अमीर देश अपने यहां कार्बन के स्तर को कम करने के लिए अपनी सुविधाओं व उत्पादन में कमी लाने के लिए ठोस कदम उठाते नहीं दिखे हैं। इस विषय पर पेरिस से लेकर मोरक्को सम्मेलनों में जितने भी मंथन हुए हैं सब में अमृत विकसित व अमीर देशों के हिस्से ही आया है जबकि विष का पान गरीब और विकासशील देशों को करना पड़ा है।

वैसे क्लाइमेट चेंज के विषय में अमेरिका के पूववर्ती राष्ट्रपतियों का रुख भी कोई बहुत उत्साहजनक नहीं रहा है क्योंकि 1997 में क्योटो में हुए सम्मेलन में दुनिया में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के संबंध में की गई संधि में प्रत्येक देश को 2012 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 1990 के मुकाबले 5.2 प्रतिशत तक की कमी करना तय किया गया था। इस संधि को 2001 में बॉन में हुए जलवायु सम्मेलन में अंतिम रूप दिया गया था। इस संधि पर दुनिया के अधिकतर देशों द्वारा अपनी सहमति भी दी गई थी। गौरतलब है कि पर्यावरण विशेषज्ञ ग्रीन हाउस गैसों के

उत्सर्जन के स्तर को 2 प्रतिशत करने के हक में थे। लेकिन अमेरिका जहां पर दुनिया की कुल आबादी के मात्र 4 प्रतिशत लोग ही बसते हैं वह इस पर सहमत नहीं हुआ था, हालांकि 1997 में क्योटो संधि के दौरान बिल क्लिंटन द्वारा इस पर सहमति जताई गई थी लेकिन जार्ज डब्ल्यू बुश ने राष्ट्रपति बनने के पश्चात इसको मानने से इनकार कर दिया था और फिर बराक ओबामा भी अपने हितों को सुरक्षित करते हुए कुछ बदलावों के साथ बुश की नीतियों को ही आगे बढ़ाते दिखे थे।उस समय अमेरिका के इस रवैये से क्योटो संधि का भविष्य ही संकट में पड़ गया था। लेकिन प्रारम्भ में क्योटो संधि पर झिझकने वाले रूस के इससे जुड़ जाने के कारण दुनिया के अन्य ऐसे देशों पर दबाव बना जोकि इससे बचते रहे थे। इसका श्रेय रूस के राष्ट्रपति व्लादिमिर पुतिन की दूरदर्शिता को जाता है। उस समय अमेरिका के 138 मेयर ने इस संधि के पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास किया था। जैसे के ट्रम्प के रूख से जाहिर हो रहा है कि वे पुतिन के प्रसंशक हैं ऐसे में मौसम परिवर्तन पर दोनों का दोस्ताना कैसे आगे बढ़ेगा ? अगर ट्रम्प और पुतिन की रणनीति मौसम परिवर्तनको लेकर ट्रम्प की राह चली तो यह पर्यावरण हितैषी नहीं होगा। अमेरिका के अधिकतर उद्योग तेल व कोयले पर आधारित हैं इसलिए वहां अधिक कार्बन डाइ ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। ब्रिटेन के एक व्यक्ति के मुकाबले अमेरिका का प्रत्येक नागरिक दो गुणा अधिक कार्बन डाइ ऑक्साइड गैस का अत्सर्जन करता है। जबकि भारत विश्व में कुल उत्सर्जित होने वाली ग्रीन हाउस गैसों का मात्र तीन प्रतिशत ही उत्सर्जन करता है।

यूनाइटेड नेशन्स की रिपोर्ट के अनुसार अगर ग्रीन हाउस गैसों पर रोक नहीं लगाई गई तो वर्ष 2100 तक ग्लेशियरों के पिघलने के कारण समुद्र का जल स्तर 28 से 43 सेंटीमीटर तक बढ जाएगा। उस समय पृथ्वी के तापमान में भी करीब तीन डिग्री सेल्शियस की बढ़ोतरी हो चुकी होगी। ऐसी स्थितियों में सूखे क्षेत्रों में भयंकर सूखा पड़ेगा तथा पानीदार क्षेत्रों में पानी की भरमार होगी। वर्ष 2004 में नैचर पत्रिका के माध्यम से वैज्ञानिकों का एक दल पहले ही चेतावनी दे चुका है कि जलवायु परिवर्तन से इस सदी के मध्य तक पृथ्वी से जानवरों व पौधों की करीब दस लाख प्रजातियां लुप्त हो जाएंगी तथा विकासशील देशों के करोड़ों लोग भी इससे प्रभावित होंगे। रिपोर्ट के संबंध में ओस्लो स्थित सेंटर फॉर इंटरनेशनल क्लाइमेट एंड एन्वायरन्मेंट रिसर्च के विशेषज्ञ पॉल परटर्ड का कहना है कि आर्कटिक की बर्फ का तेजी से पिघलना ऐसे खतरे को जन्म देगा जिससे भविष्य में निपटना मुश्किल होगा। रिपोर्ट का यह तथ्य भारत जैसे कम गुनहगार देशों को चिन्तित करने वाला है कि विकसित देशों के मुकाबले कम ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जित करने वाले भारत जैसे विकासशील तथा दुनिया के गरीब देश इससे सर्वाधिक प्रभावित होंगे।

बान की मन ने अपने कार्यकाल में अमेरिका से भी आग्रह किया था कि वह ग्लोबल वार्मिंग के खतरे को कम करने के लिए संपूर्ण विश्व की अगुवाई करे, लेकिन अमेरिका क्योटो संधि तक पर सहमत नहीं हुआ, जबकि दुनिया में कुल उत्सर्जित होने वाली ग्रीन हाउस गैसों का एक चैथाई अकेले अमेरिका उत्सर्जन करता है। अमेरिका अपने व्यापारिक हितों पर तनिक भी आंच नहीं आने देना चाहता है। अमेरिका, कार्बन डाइ ऑक्साइड उत्सर्जन के अधिकार अफ्रीकी देशों से पैसे देकर खरीदना चाहता है लेकिन अपने यहां कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में कमी नहीं लाना चाहता। ऐसे में मौसम परिवर्तन की समस्या को लेकर डोनाल्ड ट्रम्प का बेपरवाह रूख अमेरिका को निरंकुश बना सकता है, जिसके परिणाम अच्छे नहीं होंगें।

नोबल पुरूस्कार विजेता वांगरी मथाई का यह कथन कि जो भी देश क्योटो संधि से बाहर हैं वे अपनी अति उपभोक्तावाद की शैली को बदलना नहीं चाहते, सही है क्योंकि वातावरण में हमारे बदलते रहन-सहन व उपभोक्तावाद के कारण ही अधिक मात्रा में ग्रीन हाउस गैसें उत्सर्जित हो रही हैं। जिस कारण से जलवायु में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। अगर दुनिया के तथाकथित विकसित देशों द्वारा अपने रवैये में बदलाव नहीं लाया गया तो पृथ्वी पर तबाही तय है। इस तबाही को कुछ हद तक सभी देश महसूस भी करने लगे हैं तथा भविष्य की तबाही का आइना हॉलीवुड फिल्म द्यद डे आफ्टर टूमारोह्ण के माध्यम से दुनिया को परोसा भी गया। गर्मी-सर्दी का बिगड़ता स्वरूप, रोज-रोज आते समुद्री तूफान, किलोमीटर की दूरी तक पीछे खिसक चुके ग्लेशियर, मैदानी क्षेत्रों के तपमान का माइनस में जाना आदि, ये सब कुछ बुरे दौर का आगाज है।

विश्व का जो भी बड़ा आयोजन आज हो रहा है उसमें मौसम परिवर्तनको रोकने की बात कही जा रही है। यहां तक कि आइफा भी इसके लिए आगे आया है। सार्क के सम्मेलनों में भी इस पर चर्चा की जाने लगी है। वर्ष 2002 में काठमांडू में हुए सार्क सम्मेलन में मालदीव के राष्ट्रपति मामून अब्दुल गयूम ने अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा था कि अगर धरती का तापमान इसी तेजी से बढता रहा तो मालदीव जैसे द्वीप शीघ्र ही समुद्र में समा जाएंगे। उनकी यह चिंता उन देशों व द्वीपों पर भी लागू होती है जोकि समुद्र के किनारों या उसके बीच में स्थित हैं।

वर्ष 2002 में ही जलवायु परिवर्तन पर दिल्ली में हुए एक सम्मेलन में जो घोषणापत्र जारी हुआ था उसमें मौजूद 186 देशों में से अधिकतर देश इस बात पर सहमत थे कि ग्रीन हाउस गैसों में कमी लाई जानी चाहिए। लेकिन यूरोपीय संघ, कनाडा व जापान जैसे देश इससे नाखुश थे। इस सम्मेलन में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेई का यह कहना कि जो देश अधिक प्रदूषण फैलाते हैं उन्हें प्रदूषण रोकने के लिए अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए भी इन देशों को चुभ गया था। तथाकथित विकसित व औधोगिक देश अपने विकास में किसी भी प्रकार का रोडा नहीं चाहते हैं। वे अपनी मर्जी के मालिक बने हुए हैं।

कोटावाइस के सम्मेलन में देखना होगा कि अमेरिका का रूख क्या रहा है। अगर अमेरिका अपने रूख में कुछ बदलाव करता है तो सम्मेलन के परिणाम अच्छे निकल सकते हैं लेकिन अगर अमेरिका अपनी हठधर्मिता पर अड़ा रहा तो यह सम्मेलन भी विवाद की भेट चढ़ सकता है। ऐसे कठिन समय में दुनिया के अगवा देश के प्रमुख डोलाल्ड ट्रम्प ने अगर इस विषय पर अपनी नीति में बदलाव नहीं किया तो दुनिया में अव्यवस्था होनी तय है और फिर दुनिया में बहस एक नए सिरे से प्रारम्भ होगी। उस बहस के नतीजे क्या होंगे अभी उसका आंकलन करना कठिन है, लेकिन इतना तय है कि पर्यावरण के लिए परिणाम अच्छे नहीं होंगे और दुनिया एक नए सिरे से दो धड़ों में बंटी दिखेगी। बीमारी को अगर नजर अंदाज किया जाएगा तो तय है कि वह बढ़कर नासूर बनेगी ही।

(लेखक नेचुरल एन्वायरन्मेंटल एजुकेशन एंड रिसर्च (नीर) फाउंडेशन के निदेशक हैं)

सहायक नदियां साफ करने से यमुना होगी स्वच्छ

रमनकांत त्यागी • जागरण

नीर फाउंडेशन के अध्यक्ष ने खोज निकाला हिंडन का उद्गम स्थल

खारे जल को मीठा बनाने को वर्षा जल करना होगा संचयित

जागरण संवाददाता, आगरा : आरएसएस की पर्यावरण गतिविधि की बैठक में नीर फाउंडेशन के अध्यक्ष एवं स्टेट वाइल्ड लाइफ बोर्ड के सदस्य रमनकांत त्यागी ने कहा कि नदियों को स्वच्छ बनाने के लिए सहायक नदियों को स्वच्छ करना होगा। नालों और इंडस्ट्रीयल वेस्ट को उनमें पहुंचने से रोकने के लिए ठोस प्रयास करने होंगे। आगरा में भूगर्भजलस्तर तेजी से गिर रहा है और ये खारा भी है। इसको मीठा बनाने के लिए वर्षा जल संचयन के प्रयास करने होंगे। तालाबों को संरक्षित और रीचार्ज कर भूगर्भ तक मीठा जल पहुंचाना होगा।

पर्ल रिसोर्ट में बैठक के बाद रमनकांत त्यागी ने बताया कि पर्यावरण संरक्षण, जल संवर्धन और ग्रामीण विकास के लिए नीर फाउंडेशन दो दशक से प्रयास कर रहा है। यमुना की सहायक नदी हिंडन को स्वच्छ बनाने के प्रयास हुए हैं। सहारनपुर में शिवालिक हिल्स पर इसका उद्गम स्थल भी तलाश लिया गया है। इसको पुनर्जीवित करने और आसपास के तालाबों के माध्यम से रीचार्ज करने के प्रयास होंगे। भूजल सेना के अध्यक्ष और नामामी गंगे के सदस्य के रूप में ये बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने बताया कि यमुना के पास पानी नहीं है। नाले और इंडस्ट्रीयल वेस्ट इसको और दूषित करता है। इसके लिए सरकारी प्रयासों के साथ ही जागरूकता लाने की जरूरत है।

सबको बचाना होगा अनमोल संसाधन

नदीपुत्र रमनकांत त्यागी
संस्थापक, नीर फाउंडेशन, मेरठ

पानी का संकट बड़ा अवश्य है लेकिन अगर हर कोई ठान ले तो हम इससे पार पा सकते हैं। सरकार ने 'कैच द रेन' अभियान से जल संरक्षण, संग्रहण और संवर्द्धन के प्रति अपनी गंभीरता स्पष्ट की है। ऐसे में अब बारी समाज की है।

पानी हमारे दैनिक दिनचर्या का अभिन्न अंग है। दांत साफ करने, नहाने, कपड़े साफ करने, शौचालय में, घर की साफ-सफाई में, वाहनों की सफाई में, खाना बनाने, बर्तन साफ करने, फसलों की सिंचाई करने, उद्योगों में, पशुओं को नहलाने व उन्हें पानी पिलाने आदि में इसका उपयोग किया जाता है। भारत में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 140 लीटर है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक दिन में प्रति व्यक्ति को 200 लीटर पानी उपलब्ध होना चाहिए। देश के 85-90 प्रतिशत गांव भूजल से अपनी आपूर्ति करते हैं। पानी का संरक्षण व उसकी बचत, दोनों स्तरों पर जल संकट के स्थाई समाधान हेतु कार्य करने की आवश्यकता है। पानी के संरक्षण हेतु जहां तालाबों का पुनर्जीवित होना आवश्यक है वहीं अति आवश्यक है कि वर्षा की प्रत्येक बूंद का हम संचयन करें।

भारत यूं तो गांवों का देश है लेकिन वर्तमान में शहर भी तेजी से अपने पैर पसार रहे हैं। इसीलिए पानी बचाने का कार्य ग्रामीण व शहरी दोनों में रहने वाली आबादी को अपने-अपने ढंग से करना होगा। शहरों में जब चार से पांच सदस्यों का एक परिवार प्रतिदिन 200 से 300 लीटर पानी की बचत करेगा तो तय है कि देश में अरबों लीटर पानी एक दिन में बचेगा। इसके लिए हमें बस अपने आप को व्यवस्थित करना पड़ेगा। जैसे कि अगर कोई व्यक्ति फव्वारे से स्नान करता है अगर वह बाल्टी में पानी लेकर स्नान करे तो करीब 100 लीटर पानी बचा सकता है। शौचालय में अगर फ्लश के स्थान पर छोटी बाल्टी से पानी का इस्तेमाल किया जाए तो एक बार में करीब 10 लीटर पानी की बचत हो सकती है। खुले नल के विपरीत बाल्टी में पानी लेकर कपड़े धोने से करीब 100 लीटर पानी की बचत होगी। पाइप द्वारा कार या अन्य वाहन की धुलाई के बदले बाल्टी में पानी लेकर धुलाई करने से करीब 80 लीटर पानी की बचत होगी वहीं फर्श आदि की धुलाई पाइप के बदले बाल्टी में पानी लेकर करने से करीब 80 लीटर पानी की बचत होगी। इसी प्रकार नल खोलकर दांत साफ करने व सेविंग करने के बदले अगर मग में पानी लेकर ऐसा किया जाए तो क्रमशः 10-10 लीटर पानी की बचत होगी। गांवों में पानी बचाने के लिए कुछ अन्य कार्य भी करने होंगे। जैसे सिंचाई में ड्रिप और स्प्रिंकलर पद्वति अपनाकर, कम पानी चाहने वाली फसलें उगाकर तथा पशुओं को पाइप के बदले बाल्टी से नहलाकर प्रत्येक किसान परिवार हजारों लीटर पानी की बचत कर सकता है।

परिवार में जहां पानी की बचत करनी आवश्यक है वहीं पानी का पुनः इस्तेमाल करना भी हमें सीखना व करना होगा। जैसे अगर घर में आरओ (रिवर्स आस्मोसिस) लगा है तो उसके गंदे पानी को घर में लगी फुलवारी, घर साफ करने, शौचालय व वाहन धोने में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी प्रकार अगर घर में एसी (एयर कंडीशंड) लगा है तो उससे निकलने वाले पानी का इस्तेमाल भी घर के विभिन्न कार्यों में किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त हमें न दिखने वाला पानी भी बचाना सीखना होगा, अर्थात वर्चुअल वॉटर। यह वह पानी है जोकि हम वस्तुओं के रूप में इस्तेमाल करते हैं, जैसे कि हम जितनी भी वस्तुएं इस्तेमाल करते हैं, उन सभी को बनाने में कुछ लीटर से लेकर हजारों-लाखों लीटर पानी इस्तेमाल हो चुका होता है। अर्थात हम जिन किताबों को पढ़ते हैं व जिन रजिस्टरों पर कार्य करते हैं सभी में बहुत पानी खर्च होता है। इस ओर भी हमें जागरूक होना होगा।

जल संरक्षण के प्रयासों को देनी ही होगी गति

तालाबंदी का भू-जल पर असर

रमन कांत त्यागी
जल संरक्षण कार्यकर्ता

वर्तमान महामारी ने देश को बहुत सीख दी है, लेकिन यह सीख तब कारगर साबित होगी, जब बाद में भी हम इस पर अमल करें। अक्सर देखा जाता है कि जब कोई कठिन समय मनुष्य के जीवन में आता है तो वह अपने ईश्वर से यही कहता है कि इस कठिन वक्त से निकाल दो, मेरी जो गलतियां या कमियां रही हैं उनको भविष्य में नहीं करूंगा या उनमें सुधार करूंगा। बगैर ठोकर खाए ही संभल जाना आत्मज्ञान है, ठोकर खाकर संभल जाना समझदारी है, लेकिन ठोकर खाकर भी नहीं संभलना मूर्खता। वर्तमान का कठिन समय भी कुछ ऐसा ही है। इस वैश्विक महामारी से संभलने में देश ने कुछ आत्मज्ञान से काम लिया है और कुछ समझदारी से, लेकिन तालाबंदी के कारण जो प्रकृति में सुधार हुआ उसे देश किस प्रकार समझता है, इसका जवाब भविष्य के गर्त में छिपा है। पर्यावरण की दृष्टि से समझें तो वायु प्रदूषण एवं नदियों में बहुत कुछ बेहतरी नंगी आंखों से देखी जा रही है। इसी से जुड़ा एक मसला भू-जल का भी है कि आखिर तालाबंदी ने भू-जल पर क्या असर डाला है?

तालाबंदी के कारण नदियों में पानी बढ़ा है, यह तथ्य समझ से परे है। ऐसा होना संभव इसलिए नहीं है, क्योंकि इस दौरान अधिकतर बड़े उद्योग बंद रहे हैं, जो अरबों लीटर भू-जल प्रतिदिन उपयोग में लाते थे और तरल प्रदूषण के रूप में नदियों में बहा देते थे। तालाबंदी के दौरान न तो उद्योग इन अरबों लीटर भू-जल को खींच पाए, न ही उसको नदियों में डाल पाए। ऐसे में नदियों में प्रदूषण के साथ-साथ 15 से 20 प्रतिशत पानी की मात्रा भी कम हुई। यह तथ्य सर्वविदित है कि नदियों में नालों या सीधे जो शोधित या गैर-शोधित पानी बहाया जाता है उसमें करीब 75 से 80 प्रतिशत हिस्सा घरेलू होता है, जबकि 20 से 25 प्रतिशत ही उद्योगों की भागीदारी होती है। ऐसे में यह आंकड़ा स्पष्ट है कि तालाबंदी के दौरान नदियों के पानी में कमी आई। उत्तर प्रदेश में नदियों के बहाव में पांच से 10 प्रतिशत की कमी प्रयागराज कुंभ के दौरान भी देखी गई थी, क्योंकि उस समय भी गंगा या उसकी सहायक नदियों में तरल कचरा गिराने वाले उद्योगों को नियमानुसार कुछ-कुछ दिन के लिए बंद किया गया था।

भारत में सर्वाधिक भू-जल लगभग 80 प्रतिशत का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता है, जो गैर जरूरी है। नीति आयोग के अनुसार भारत राष्ट्रीय भू-जल आपदा की ओर बढ़ रहा है। नीति आयोग के तथ्य इस बात की तस्दीक करते हैं। कृषि कार्यों में बेतहाशा भू-जल दोहन के चलते देश के करीब 54 प्रतिशत ट्यूबवेल का स्तर नीचे जा चुका है। देश के करीब साठ करोड़ लोग कई प्रकारों से पानी की समस्या से जूझ रहे हैं। करीब 75 प्रतिशत परिवारों के पास स्वच्छ पेयजल के साधन नहीं हैं और ग्रामीण भारत के करीब 84 प्रतिशत परिवार आज भी हैंडपंप (निजी व सरकारी), कुएं या नहर आदि अन्य स्रोत से अपनी प्यास बुझा रहे हैं, जबकि शहरों में 95 प्रतिशत लोग पाइप वाटर से अपना गला तर कर रहे हैं। नीति आयोग के जल प्रदूषण संबंधी आंकड़े इससे भी भयावह हैं। देश में मौजूद कुल पानी का करीब 70 प्रतिशत प्रदूषित हो चुका है। यही कारण है कि जल गुणवत्ता में भारत का विश्व के 122 देशों में से 120वां स्थान है। तालाबंदी के चलते इन आंकड़ों में अवश्य सुधार हुआ होगा। केंद्रीय भू-जल बोर्ड व राज्यों के जल संबंधी विभागों को इसका आकलन जरूर करना चाहिए।

देश के करीब आधे राज्यों के पास ही भू-जल संबंधी कानून मौजूद हैं, जबकि समस्या विकराल है। सभी राज्यों को भू-जल कानूनों को भी अपने-अपने राज्यों की परिस्थितियों के अनुसार अमल में लाना होगा, क्योंकि भविष्य का जल बहुत दुर्लभ होने वाला है, यह हमें वर्तमान संकट ने विदित करा दिया है।

अपनी हदें बता रही हैं नदियां

शहरों में जलभराव का ठीकरा घनी बारिश पर फोड़ना ठीक नहीं है। हमें समझना होगा कि नदियों का पानी हमारे घरों में नहीं घुसा है, बल्कि हम नदियों के घरों में घुसे बैठे हैं। इसी के साथ शहरों में नदी-नालों की साफ-सफाई व जल निकासी के ढांचे को भी दुरुस्त करना होगा।

नदीपुत्र रमन कांत
संस्थापक, भारतीय नदी परिषद

हिमाचल में कुल्लू से लेकर राजधानी दिल्ली तक को बारिश के पानी ने तरबतर कर दिया है। नदियां अपने वेग के रास्ते में जो कुछ भी आ रहा है, उसे बहा दे रही हैं। अपनी जिम्मेदारी से कन्नी काटने वाले और नदियों की जमीन पर कब्जा जमाए हुए लोग तर्क दे रहे हैं कि कम समय में ज्यादा बारिश के कारण ये सब हो रहा है। हालांकि विशेषज्ञ बता रहे हैं कि इतनी बारिश पहले भी होती रही है। हमें प्रकृति के संकेतों को समझना होगा। इसी में मानव सभ्यता की भलाई है।

कहा जा रहा है कि नदी के बहाव ने ये पुल बहा दिया, वो मकान तोड़ दिया और गाड़ियों को बहा दिया। सच तो यह है कि नदी ने बस बरसात के पानी के जरिये हमें एक बार पुनः बताया है कि मेरी सीमा यहां तक है। नदियों ने अपनी हद के साथ-साथ मानव समाज को भी उसकी हद बताई है। नदियां स्पष्टता के साथ कह रही हैं कि आप हमारे घर में अवैध रूप से जमें बैठे हो, या तो समय रहते हमारी जमीन खाली कर दो, नहीं तो हम खुद करा लेंगे। यह एक सर्वविदित ऐतिहासिक तथ्य है कि यमुना नदी कभी लाल किले तक ही बहती थी। इस बार बारिश में फिर से यमुना का पानी लाल किले तक पहुंचना यही स्थापित कर रहा है कि नदी की हदें वहां तक हैं।

तबाही से बचना है तो नदियों के रास्तों से हटना ही होगा। हमें समझना होगा कि नदी बहाव की धारा के दोनों ओर का कुछ क्षेत्र भी नदी का ही हिस्सा होता है, जिसको हम नदी के बेसिन के रूप में जानते हैं। इसे आप नदी का आंगन भी कह सकते हैं। उसके बिना नदी अधूरी रहती है क्योंकि नदी की धारा को बल वहीं से मिलता है। अगर हम वर्ष के कुछ महीने नदी के उस भाग को सूखा रहने के चलते कब्जाने का प्रयास करने लगते हैं, तो हमें ऐसे किसी भी कृत्य से बचना होगा। इसे ऐसे समझिए कि गांव में किसी का मकान है और वह परिवार शहर में नौकरी या व्यवसाय के लिए चला जाए, तो उसके घर पर कब्जा नहीं किया जाता। अगर किसी ने ऐसा किया भी तो परिवार के आने पर कब्जा छोड़ना तो पड़ेगा।

सबको बचाना होगा अनमोल संसाधन

नदीपुत्र
रमनकांत त्यागी
संस्थापक, नीर फाउंडेशन, मेरठ

पानी का संकट बड़ा अवश्य है लेकिन अगर हर कोई ठान ले तो हम इससे पार पा सकते हैं। सरकार ने 'कैच द रेन' अभियान से जल संरक्षण, संग्रहण और संवर्द्धन के प्रति अपनी गंभीरता स्पष्ट की है। ऐसे में अब बारी समाज की है।

पानी हमारे दैनिक दिनचर्या का अभिन्न अंग है। दांत साफ करने, नहाने, कपड़े साफ करने, शौचालय में, घर की साफ-सफाई में, वाहनों की सफाई में, खाना बनाने, बर्तन साफ करने, फसलों की सिंचाई करने, उद्योगों में, पशुओं को नहलाने व उन्हें पानी पिलाने आदि में इसका उपयोग किया जाता है। भारत में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 140 लीटर है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक दिन में प्रति व्यक्ति को 200 लीटर पानी उपलब्ध होना चाहिए। देश के 85-90 प्रतिशत गांव भूजल से अपनी आपूर्ति करते हैं। पानी का संरक्षण व उसकी बचत, दोनों स्तरों पर जल संकट के स्थाई समाधान हेतु कार्य करने की आवश्यकता है। पानी के संरक्षण हेतु जहां तालाबों का पुनर्जीवित होना आवश्यक है वहीं अति आवश्यक है कि वर्षा की प्रत्येक बूंद का हम संचयन करें।

भारत यूं तो गांवों का देश है लेकिन वर्तमान में शहर भी तेजी से अपने पैर पसार रहे हैं। इसीलिए पानी बचाने का कार्य ग्रामीण व शहरी दोनों में रहने वाली आबादी को अपने-अपने ढंग से करना होगा। शहरों में जब चार से पांच सदस्यों का एक परिवार प्रतिदिन 200 से 300 लीटर पानी की बचत करेगा तो तय है कि देश में अरबों लीटर पानी एक दिन में बचेगा। इसके लिए हमें बस अपने आप को व्यवस्थित करना पड़ेगा। जैसे कि अगर कोई व्यक्ति फव्वारे से स्नान करता है अगर वह बाल्टी में पानी लेकर स्नान करे तो करीब 100 लीटर पानी बचा सकता है। शौचालय में अगर फ्लश के स्थान पर छोटी बाल्टी से पानी का इस्तेमाल किया जाए तो एक बार में करीब 10 लीटर पानी की बचत हो सकती है। खुले नल के विपरीत बाल्टी में पानी लेकर कपड़े धोने से करीब 100 लीटर पानी की बचत होगी। पाइप द्वारा कार या अन्य वाहन की धुलाई के बदले बाल्टी में पानी लेकर धुलाई करने से करीब 80 लीटर पानी की बचत होगी वहीं फर्श आदि की धुलाई पाइप के बदले बाल्टी में पानी लेकर करने से करीब 80 लीटर पानी की बचत होगी। इसी प्रकार नल खोलकर दांत साफ करने व सेविंग करने के बदले अगर मग में पानी लेकर ऐसा किया जाए तो क्रमशः 10-10 लीटर पानी की बचत होगी। गांवों में पानी बचाने के लिए कुछ अन्य कार्य भी करने होंगे। जैसे सिंचाई में ड्रिप और स्प्रिंकलर पद्धति अपनाकर, कम पानी चाहने वाली फसलें उगाकर तथा पशुओं को पाइप के बदले बाल्टी से नहलाकर प्रत्येक किसान परिवार हजारों लीटर पानी की बचत कर सकता है।

परिवार में जहां पानी की बचत करनी आवश्यक है वहीं पानी का पुनः इस्तेमाल करना भी हमें सीखना व करना होगा। जैसे अगर घर में आरओ (रिवर्स आस्मोसिस) लगा है तो उसके गंदे पानी को घर में लगी फुलवारी, घर साफ करने, शौचालय व वाहन धोने में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी प्रकार अगर घर में एसी (एयर कंडीशंड) लगा है तो उससे निकलने वाले पानी का इस्तेमाल भी घर के विभिन्न कार्यों में किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त हमें न दिखने वाला पानी भी बचाना सीखना होगा, अर्थात वर्चुअल वॉटर। यह वह पानी है जोकि हम वस्तुओं के रूप में इस्तेमाल करते हैं, जैसे कि हम जितनी भी वस्तुएं इस्तेमाल करते हैं, उन सभी को बनाने में कुछ लीटर से लेकर हजारों-लाखों लीटर पानी इस्तेमाल हो चुका होता है। अर्थात हम जिन किताबों को पढ़ते हैं व जिन रजिस्टरों पर कार्य करते हैं सभी में बहुत पानी खर्च होता है। इस ओर भी हमें जागरूक होना होगा।

नदियों को कोई नहीं मिटा सकता

कथा और जनश्रुतियों के आधार पर नदी पुत्र रमन कांत त्यागी द्वारा खोजे गए नीम नदी के इतिहास को लेकर दैनिक जागरण ने सीरीज शुरू की। आज सीरीज की अंतिम कड़ी है...

...और अंत में नीम नदी की वर्तमान परिस्थितियों पर नजर डालने से पता चलता है कि नीम नदी जो आज दिखती है, वह ऐसी न होकर जीवंत रही है। इसकी कथा दशकों नहीं सदियों पुरानी है। नदी जीवंत रही और इस क्षेत्र की जीवन रेखा बनी रही है। नदी के साथ निकट के गांवों का जुड़ाव भी गहरा रहा है। एक अन्तहीन विकल्प का प्रतीक रही है, नीम नदी। इस क्षेत्र के श्रद्धालु नीम को भी गंगा का रूप ही मानते रहे हैं। नदी ने जहां यहां की कृषि को समृद्ध किया है, वहीं जल की उपलब्धता व गुणवत्ता को भी बढ़ाता रहा है। जब जल जीवन है तो नदी भी जीवन ही है, क्योंकि नदी जहां जल की कमी को दूर करती है। वहीं, जलभराव की समस्या से भी निजात दिलाती है। नीम नदी उसका सटीक उदाहरण रही है। हम नदी को मिटाने का प्रयास अवश्य कर सकते हैं, लेकिन नदियां कभी मिटती नहीं हैं, वे लौटकर पुनः आती हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि नदियां प्रकृति का अहम हिस्सा हैं। नीम

रमन कांत त्यागी • जागरण

नदी को कोई लाख चाहकर मिटा नहीं सकता। कोई भी कुछ नहीं करेगा तो भी किसी वर्ष इतना पानी बरसेगा कि नदी अपना रास्ता स्वयं बना लेगी और एक ही झटके में अपनी खोई हुई जमीन भी पा लेगी। नीम नदी जैसी विशेष प्रकार की नदियां देश में कम ही हैं, या यूं कहें कि जहां दो बड़ी नदियों का दोआब बनेगा, वहां नीम जैसी नदी जन्म लेगी ही। हमें भी नदी की पौराणिकता से सीख लेते हुए नदी के निर्मल व अविरल बहने के नियमों का पालन करते हुए जीना सीखना ही होगा। नदी को मिटाकर हम कुछ प्राप्त नहीं कर सकते हैं जबकि, नदी के साथ रहकर सब कुछ पा सकते हैं।

सहेजनी होगी बारिश की हर बूंद

नदीपुत्र रमन कांत त्यागी
निदेशक, नेचुरल एनवायरमेंटल एजुकेशन एंड रिसर्च (नीर) फाउंडेशन, मेरठ

मानसून की वर्षा प्रकृति प्रदत्त अनमोल उपहार है जिसे हमें सम्मान से ग्रहण करना चाहिए। कोरोना काल में अच्छा मानसून एक अवसर है। खत्म हो रहे भू-जल पर अगर लगाम न लगी तो भविष्य का बे-पानी होना तय है। और बिना पानी सब सून।

कोरोना महामारी के इस विकट समय में अच्छे मानसून की खबर सुकून देने वाली है। यह इस संकट से उबरने का एक अच्छा अवसर खुद में समेटे है। अब जबकि मानसून तेजी से देश में आगे बढ़ रहा है तों देश को विगत वर्षों से कहीं अधिक सतर्कता के साथ तैयार हो जाना चाहिए। हमारी तैयारी ऐसी हो कि बरसात की एक-एक बूंद जहां भी बरसे उसे वहीं एकत्र कर लिया जाये व संरक्षित किया जा सके। यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति को करने की जरूरत है। भारत सरकार और रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकांत दास कोरोना पीड़ित अर्थव्यवस्था के उभार में कृषि के योगदान को ही अहम मान रहे हैं।

हमें जल संरक्षण की ऐसी व्यवस्थाएं अपनानी होंगी जिनसे गांव के पानी को गांव में व खेत के पानी को खेत में ही रोक दिया जाए। गांव व खेत के सभी तालाबों को इस लायक बनाना होगा कि उनमें एकत्र होने वाला पानी संरक्षित रह सके। तालाबों के आस-पास का पानी भी उनमें आकर एकत्र हो सके इसके लिए नालियों को दुरुस्त करना होगा। तालाब पुनर्जीवन के इस कार्य में अभी से लग जाना होगा। खेत तालाबों की भूमिका इसलिए अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि जहां भू-जल स्तर अधिक गहराई में चला गया है वहां सिंचाई का साधन या तो वर्षा है या फिर वर्षा के दौरान खेत तालाब में एकत्र किया गया वर्षाजल। इसके लिए खेत तालाबों को सुदृढ़ करना अधिक आवश्यक है। खेतों की मेड़बंदी भी वर्षाजल को खेतों में अधिक समय तक रोकने का बेहतर उपाय है, इसके लिए नीति आयोग द्वारा चुने गए उत्तर प्रदेश के जल गांव 'जखनी' का मॉडल (हर खेत पर मेड़ और मेड़ पर पेड़) सभी गांवों में अपनाना होगा। कोरोना महामारी के खौफ के चलते उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश व पश्चिम बंगाल राज्यों से अधिक संख्या में कामगार शहरों से गांव की ओर लौटा है, उनको अगर गांव में जल संरक्षण के कार्यों में लगाया जाये तो इससे जहां उनके लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे वहीं बरसात की बूंदों को सहेजने की व्यवस्था भी बन जाएगी। इन कामगारों को छोटी नदियों व बरसाती नालों की सफाई में भी लगाया जा सकता है। अगर छोटी नदियों व बरसाती नालों के मार्ग से अवरोध हट जाएंगे तो अतिरिक्त वर्षाजल को बहने का सुगम रास्ता मिल जाएगा और हमारे ये साधन भी पुनर्जीवित हो जाएंगे। इससे बाढ़ के खतरे को भी कम किया जा सकता है। महाराष्ट्र, गुजरात व तमिलनाडू जैसे बड़े राज्य जहां कोरोना की मार सर्वाधिक है इनमें वर्षाजल की बूंदों को सहेजने के कार्य को बड़े स्तर पर चलाया जाना चाहिए। हम अगर ऐसा कर पाए तो जहां भू-जल स्तर में सुधार होगा वहीं खेतों में नमी अधिक समय तक रहने से फसलों की पैदावार भी अच्छी होगी। अगर हम बरसात के बहते पानी को रोक पाए तो बाढ़ की समस्या से भी कुछ राहत अवश्य मिलेगी। ऐसा होने से कोरोना महामारी की टीस पर कृषि उपज का मरहम लगाया जा सकेगा।

मानसून के दौरान बरसने वाले जल का संरक्षण करना उद्योगों के लिए अनिवार्य तो है लेकिन उसको एकत्र करके उसका उपयोग भी अनिवार्य बनाना चाहिए, क्योंकि उद्योग केवल भू-जल का इस्तेमाल करते हैं। एक गन्ना मिल या गत्ता मिल एक दिन में लाखों लीटर भू-जल खींच लेती है जिसकी भरपाई नाम मात्र के लिए ही की जाती है। उद्योग अगर अपने परिसर में वर्षाजल को बड़े स्तर पर रोकने की व्यवस्था करें तो उसका इस्तेमाल वे स्वयं कर सकते हैं। इससे जहां भू-जल पर दबाव कम होगा वहीं उसके प्रदूषण की समस्या से भी किसी हद तक छुटकारा मिलेगा। ऊर्जा की खपत भी कम होगी।

धीमे जहर से परहेज ही है बचाव

रमन कांत त्यागी
निदेशक–नेचुरल एनवायरमेंटल एजुकेशन एंड रिसर्च फाउंडेशन, मेरठ

प्राकृतिक जल स्रोतों के लिए प्लास्टिक सबसे बड़ा खतरा है। प्लास्टिक के कचरे ने गांव के तालाबों से लेकर देश की छोटी-बड़ी नदियों को पाट दिया है। नाले-नालियां प्लास्टिक कचरे से बजबजा रहे हैं।

तमाम विश्व आज प्लास्टिक की मार से कराह रहा है। अमेरिका जैसा विकसित देश हो या भारत जैसा विकासशील सभी प्लास्टिक के उपयोग से बढ़ने वाली दुश्वारियों से परिचित हो चुके हैं। विश्व का वातावरण बेहतर बनाए रखने के लिए कार्यरत सरकारी व गैर-सरकारी संगठन इस चिंता में डूबे हैं कि अगर समय रहते समाधान नहीं किया गया तो भविष्य में नतीजे भयावह होने तय हैं। पिछले दो दशकों में बढ़े प्लास्टिक के बेतहासा उपयोग के कारण उसके न गलने वाले कचरे ने गांवों से लेकर शहरों तक, धरातल से लेकर नदियों तक तथा समुद्रों से लेकर पहाड़ों तक पर अपनी मौजूदगी असरदार तरीके से दर्ज करा दी है। प्लास्टिक का जितना उपयोग बढ़ता जा रहा है उसका उतना ही कचरा पैदा हो रहा है जोकि धरती की जीवंतता को नष्ट करने पर तुला है।

भारत में दिल्ली जैसा बड़ा शहर हो या मेरठ जैसा छोटा शहर सभी में घरों से निकलने वाले प्लास्टिक कचरे की समुचित निस्तारण व्यवस्था नहीं है। वन, पर्यावरण एवं मौसम परिवर्तन मंत्रालय द्वारा बनाए गए प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन (संशोधन) नियम-2018 अभी अपना कोई खास असर जमीन पर नहीं दिखा पाया है। अभी सरकार द्वारा कैरी बैग की मोटाई को 40 माइक्रॉन से बढ़ाकर 50 माइक्रॉन कर दिया गया है।

विश्व के समुद्रों व महासागरों में करीब 80 प्रतिशत प्लास्टिक कचरा भूमि से जाता है, जिसमें 50 प्रतिशत एकल उपयोग वाला होता है। इसको गलने में 500 से 1000 वर्ष का समय लगता है। यही कारण है कि समुद्रों व महासागरों में प्रतिवर्ष करीब 10 लाख समुद्री पक्षी व एक लाख स्तनधारी प्लास्टिक प्रदूषण के कारण मौत के मुंह में समा जाते हैं।

स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क द्वारा अमेरिका, भारत, इंडोनेशिया, मेक्सिको, लेबनान, कीनिया व थाइलैंड में बिकने वाली विभिन्न कंपनियों की 259 बोतलों पर किए गए अध्ययन में बोतल बंद पानी में 6.5-100 माइक्रॉन तक के 314 कण पाए गए जबकि 100 माइक्रॉन से बड़े प्रति लीटर दस कण पाए गए। ये कण लगातार बोतल बंद पानी पीने से हमारे शरीर के विभिन्न हिस्सों में जमा हो जाते हैं जिनसे कैंसर जैसी घातक बीमारी जन्म लेती है। यूनाइटेड नेशन एनवायरमेंट कार्यक्रम के एक अध्ययन के अनुसार प्लास्टिक के अत्यंत छोटे कण माइक्रोबीड्स भी माइक्रो प्लास्टिक के ही अंश हैं। ये उपयोग के बाद जलस्रोतों तक पहुंच जाते हैं। ये विघटित नहीं होते हैं और जब एक बार पर्यावरण में प्रवेश कर जाते हैं तो अनियंत्रित हो जाते हैं जिन्हें निकालना असंभव है। अमेरिका में 2015 में माइक्रोबीड्स फ्री वाटर एक्ट बनाना पड़ा।

किसी भी समस्या से निपटने के लिए उसकी जड़ पर प्रहार करना उसके समाधान का सीधा रास्ता है। प्लास्टिक के खतरे से निपटने के लिए सरकारें जो करेंगी वे करें लेकिन इससे बचने के लिए हमें स्वयं में बदलाव लाना होगा। प्रत्येक व्यक्ति जब यह ठान लेगा कि मेरे दैनिक जीवन में प्लास्टिक का उपयोग कम से कम या कतई नहीं होगा तो हम स्थाई समाधान की ओर बढ़ सकते हैं। साथ ही लोगों को जागरूक करें और प्लास्टिक मुक्ति के लिए सक्रिय हों।

इंसानी अस्तित्व व सभ्यता की पर्याय हैं नदियां

देश एक शरीर है तो नदियां उसकी धमनियां। अगर उनमें बह रहा रक्त दूषित होगा तो शरीर का विकास कैसे संभव है? शुद्ध रक्त परिसंचरण से ही हम शरीर रूपी देश को स्वस्थ रख सकते हैं। शुद्ध पानी और पर्यावरण तभी मिलेगा जब नदियां शुद्ध होंगी।

नदीपुत्र रमनकांत त्यागी
संस्थापक, नीर फाउंडेशन, मेरठ

शुद्ध पर्यावरण और स्वच्छ जल को मौलिक अधिकार बताने और प्रत्येक व्यक्ति को उन्हें राज्यों द्वारा सुनिश्चित कराने की माननीय सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी निश्चितताैर पर आंखें खोलने वाली है। आखिर देश के प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ पेयजल क्यों नहीं मिल पा रहा है? इसके कारणों को खोजना जितना आसान है उतना ही मुश्किल उन कारणों का समाधान करना भी है। देश के कई हिस्से ऐसे हैं जहां पानी की कमी है लेकिन अधिकतर भाग ऐसे हैं जहां पानी की कमी तो नहीं है लेकिन वहां का भूजल प्रदूषित हो चुका है। पानी का यह प्रदूषण प्राकृतिक व मानव निर्मित दोनों प्रकार का है।

जहां-जहां प्राकृतिक जल प्रदूषण है वहां सरकारें विभिन्न प्रकार से लोगों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के प्रयास कर रही हैं, लेकिन वर्तमान में मानव निर्मित प्रदूषण देश के सामने एक बड़ी चुनौती है। विश्व बैंक के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में पेयजल के रूप में करीब 85 प्रतिशत भूजल का इस्तेमाल होता है। ऐसे में जब भूजल ही प्रदूषित हो जाएगा तो देश की बड़ी आबादी को स्वच्छ पेयजल मिलना दूभर ही बना रहेगा। इसीलिए आवश्यक है कि हम भूजल के प्रदूषण के कारणों व उसके समाधान की ओर अपना ध्यान लगाएं।

स्वच्छ पानी अर्थात पेयजल व सिंचाई की उपलब्धता के लिए हमारी पुरातन सभ्यताएं नदियों के किनारे बसती रही हैं। यही जीवनदायनियां हमारे पर्यावरण में भी प्राण फूंकती रही हैं। जल की जैव विविधता के साथ नदियों के बेसिन में पर्यावरण को पोषित-पुष्पित करती हैं। दुखद यहीं है कि दूसरों में जान फूंकने वाली ये जलधाराएं मृतप्राय होती जा रही हैं। वर्तमान समय में हमारे देश में भूजल प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण नदियों का प्रदूषित होना है। वह फिर चाहे गंगा-यमुना जैसी सदानीरा हों या फिर हिंडन, काली, कृष्णी व अरिल जैसी बरसाती नदियां। जिन नदियों में पानी वर्षभर बना रहता है उनमें प्रदूषण का असर कम नजर आता है लेकिन जिन नदियों का पानी या तो सूख चुका है या फिर कुछ दूरी तक ही अपनी यात्रा तय कर पाता है, उनके मैदानी क्षेत्रों का भूजल पूरी तरह से प्रदूषित हो चुका है। छोटी व बरसाती नदियों को उद्योगों के गैर-शोधित तरल कचरे तथा कस्बों व शहरों के घरेलू बहिस्राव के बहाव ने प्रदूषित नालों में तब्दील कर दिया है। यह सब पिछले चार से पांच दशकों से यूं ही चलता आ रहा है जिसके कारण इन नदियों में बहने वाला प्रदूषण धीरे-धीरे रिसकर भूजल में जा पहुंचा है। विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि छोटी व बरसाती नदियों में बहने वाले पानी में जिन रासायनिक तत्वों के अंश पाए गए हैं वही तत्व इन नदियों के मैदानी क्षेत्रों में भूजल में भी पाए गए हैं। यही कारण था कि राष्ट्रीय हरित अभिकरण पिछले दिनों हिंडन नदी किनारे बसे 124 उद्योगों को बंद करने का आदेश दिया था।

भारत के सभी हिस्सों में छोटी व बरसाती नदियों के प्रदूषित होने के कारण बड़े क्षेत्र का भूजल प्रदूषित हो चुका है, यही कारण है कि जो सभ्यताएं या आबादी स्वच्छ पेयजल की तलाश में इन नदियों के किनारे बसीं, पली, बढ़ीं व विकसित हुईं वे नदियों के भयंकर प्रदूषण के कारण वहां से उजड़ने के कगार पर हैं। इसको सुधारना बड़ी चुनौती है। इसका एकमात्र स्थाई समाधान हमें अपनी छोटी व बरसाती नदियों को प्रदूषणमुक्त व पुनर्जीवित करना ही है।

सुनहरी तस्वीर का यह बदलाव बने स्थायी

अब नदियों संबंधी विभागों को इस पर गहन चिंतन-मनन करना चाहिए कि नदियों में लॉकडाउन के कारण दिख रहे बदलाव को स्थाई कैसे रखा जाए और बदलाव को 30 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत तक ले जाया जाए।

नदीपुत्र रमन कांत त्यागी
अध्यक्ष, नेचुरल एनवायरमेंटल एजुकेशन एंड रिसर्च (नीर) फाउंडेशन

केंद्रीय व राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण विभागों के तमाम प्रयासों के बावजूद उद्योगों से निकलने वाले तरल कचरे की समस्या ऐसी है जो नदियों में तो दिखती है लेकिन पैदा कहां से हो रही है, इस पर जानते हुए भी जिम्मेदार विभाग मौन रहते हैं। कोरोना महामारी के संकट ने यह सिद्ध कर दिया है कि कहीं न कहीं उद्योग व उन पर निगरानी करने वाला तंत्र अपना कार्य ईमानदारी से नहीं कर पा रहा है। वर्तमान में लॉकडाउन के चलते नदियों के पानी में जो सुधार दिख रहा है उससे उद्योगों व प्रदूषण नियंत्रण विभाग की कलई खुल गई है। ऐसा नहीं है कि नदियों में सौ प्रतिशत बदलाव दिख रहा है लेकिन 20 से 30 प्रतिशत पानी की शुद्धता अवश्य हुई है। इस शुद्धता का मानक वैज्ञानिक दृष्टि से और भी अधिक हो सकता है लेकिन इसकी प्रमाणिकता इस समय नदियों के पानी का परीक्षण करने से ही सिद्ध होगी, क्योंकि उद्योगों से जो तरल कचरा विभिन्न नालों के माध्यम से सीधे नदियों में आता है उसमें कीटनाशकों व रसायनों के आने की आशंका रहती है जोकि इस समय पूर्णतः बंद है। ऐसे में पूरी संभावना है कि नदियों के पानी की गुणवत्ता वैज्ञानिक दृष्टि से भी जरूर बेहतर हुई होगी।

गंगा-यमुना जैसी नदियों में जिनमें की अपना स्वतः बहाव है, उनमें असर अधिक दिख रहा है, जबकि हिंडन-काली जैसी सैंकड़ों बरसाती नदियों का पानी आज भी काला ही है, क्योंकि उनमें उद्योगों का तरल कचरा तो आना बंद हुआ है लेकिन कस्बों-शहरों का सीवर लगातार बह रहा है। इन नदियों में अपना पानी नहीं है इसीलिए सीवर को बहाकर ले जाने की गंगा जैसी क्षमता इन नदियों में नहीं है। नदियों के प्रदूषण में सीवर के तरल कचरे की भूमिका 70 से 80 प्रतिशत होती है जबकि उद्योगों के कचरे की भूमिका 20 से 30 प्रतिशत, लेकिन यह उद्योगों का तरल कचरा अपने रासायनिक गुणों के कारण अधिक खतरनाक होता है।

इस अवसर पर गंगा के पानी में कहीं-कहीं 30 से 40 प्रतिशत की शुद्धता लॉकडाउन की वजह अर्थात उद्योगों के बंद होने तथा मानव दखल समाप्त होने के कारण आयी है। जल शक्ति मंत्रालय के अधीन नमामि गंगे इस बदलाव से खुश है जबकि इसके लिए उसके द्वारा कोई पैसा खर्च नहीं किया गया है। ऐसे में नमामि गंगे को अब ये गंभीरता से सोचना होगा कि लॉकडाउन के कारण जो बदलाव नदियों में दिखने लगा है उसको स्थायी कैसे रखा जाए क्योंकि लॉकडाउन खुलते ही उद्योग पहले की भांति चलने लगेंगे और नदियों के पानी में आया ये सुधार पुनः छूमंतर हो जाएगा। तो ऐसा क्या किया जाए कि यह बदलाव बना रहे? इस पर गंभीरता से सोचने व उसको अमल करने की आवश्यकता है।

यूं तो बरसात के समय नदियां लॉकडाउन की अपेक्षा अधिक साफ हो जाती हैं क्योंकि उस दौरान वर्षाजल उद्योगों के तरल सहित सीवर को भी बहा ले जाता है, लेकिन जैसे ही बरसात समाप्त होती है तो नदियां फिर से गंदी हो जाती हैं। सीवर के मामले को हल करने के लिए कस्बों-शहरों में सीवर शोधन प्लांट बनाये जा रहे हैं जिस कार्य को सभी जगह पूर्ण होने में अभी एक दशक लग सकता है, लेकिन सभी उद्योग यह दावा करते हैं कि उनके यहां रसायनिक शोधन प्लांट लगे हैं और वे उद्योग से बाहर निकलने वाले तरल को माननीय राष्ट्रीय हरित अभिकरण (एनजीटी) के मानक के अनुसार ही बाहर जाने देते हैं। प्रदूषण नियंत्रण विभाग के जनपदीय अधिकारियों द्वारा लगातार इनकी निगरानी की जाती है। नमामि गंगे, जल शक्ति मंत्रालय तथा राज्य व केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण विभाग इन उद्योगों की ऑनलाइन निगरानी भी करते हैं। इन सब निगरानियों में सब कुछ ठीक रहता है लेकिन मौके पर सब कुछ बदला हुआ होता है। अब जब उद्योग बंद हैं तो नदियों में बदलाव क्यों दिख रहा है? इसका सीधा-सच्चा कारण समझ आता है कि हमारे निगरानी तंत्र में कुछ झोल है। अगर हमें अपनी नदियों में स्थायी सुधार चाहिए तो इस झोल को समाप्त करना ही होगा। प्रदूषण नियंत्रण विभाग के स्थान पर नई निगरानी व्यवस्था खड़ी करनी होगी।

वाशिंगटन से होकर बहने वाली पोटोमैक व लंदन से होकर बहने वाली थेम्स नदी कभी यमुना व हिंडन जितनी ही प्रदूषित हुआ करती थी, लेकिन उन्होंने नदियों के सुधार हेतु कड़े नियम बनाये और उनको सख्ती से लागू भी किया। इस तरह के सफल उदाहरणों से सीखते हुए हमें भी स्थाई समाधान की ओर जाना होगा।

कार्बन उत्सर्जन करें कम, पर्यावरण भरेगा दम

वाहनों का उत्पादन व बिक्री, एयरकंडीशंड का तापमान निश्चित करना, पानी उपयोग की मात्रा तय करना, कृषि क्षेत्र में परिवर्तन, पीपल व चौड़े पत्तों की प्रजाति के जंगल खड़े करना, उद्योगों को कम पानी इस्तेमाल की ओर ले जाना शामिल हैं।

रमन कांत त्यागी, निदेशक, नेचुरल एनवायरमेंटल एजुकेशन एंड रिसर्च फाउंडेशन

हम बदलेंगे, युग बदलेगा। हम सुधरेंगे, युग सुधरेगा। यह उक्ति इस जहान की तमाम समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन की विश्वव्यापी समस्या से सभी कराह रहे हैं, क्योंकि अगर समाधान की दिशा में गंभीरता से आगे नहीं बढ़ा गया तो आने वाले तीन दशकों में यह समस्या विकराल रूप धारण कर लेगी। समस्या के मूल में वातावरण के अंदर ग्रीनहाउस गैसों की अधिकता व लगातार बढ़ता कार्बन उत्सर्जन है। इस सप्ताह अंतरराष्ट्रीय पत्रिका नेचर कम्युनिकेशन जर्नल में प्रकाशित इस खबर ने सबको सकते में डाल दिया है कि भारत की आर्थिक राजधानी मुंबई 2050 तक समुद्र का जल स्तर बढ़ने से डूब जाएगी।

विश्व में कुल कार्बन उत्सर्जन में भारत की हिस्सेदारी करीब 5 प्रतिशत है जबकि चीन की 21 व अमेरिका की 20 प्रतिशत। कार्बन उत्सर्जन के कारणों में बिजली व गर्माहट की सर्वाधिक 24 प्रतिशत, भू-उपयोग में परिवर्तन की 18 प्रतिशत, उद्योग की 10 प्रतिशत तथा कृषि व परिवहन की 13-13 प्रतिशत भागीदारी है। पेरिस समझौते के अनुसार भारत ने 2005 की तुलना में 2030 तक उत्सर्जन की तीव्रता को 30 से 35 प्रतिशत कम करने की प्रतिबद्धता जताई है। 2030 तक अपनी कुल बिजली क्षमता के 40 प्रतिशत को अक्षय ऊर्जा व परमाणु ऊर्जा में तब्दील करना भी भारत का लक्ष्य है जोकि एक बेहतर कदम है। भारत सभी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जलवायु परिवर्तन की समस्या के समाधान में गांधी दर्शन की बात करता रहा है अर्थात पंच तत्वों (पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश व वायु) का सदुपयोग करके अपने जीवन को व्यतीत करना।

समस्या के समाधान के लिए सबसे पहले कार्बन फुट प्रिंट को समझना आवश्यकता है। किसी व्यक्ति या संगठन द्वारा किया जाने वाला कार्बन उत्सर्जन जितना है वही उसका कार्बन फुटप्रिंट है। हमें इसमें ही कमी लानी है। इसके लिए निजी, सामाजिक व सरकारी तीनों स्तरों पर तुरंत प्रभावी व दूरगामी प्रभाव वाले कदम उठाने होंगे। हमें किसी भी वस्तु का सदुपयोग करना सीखना होगा न कि उसका दोहन।

भारत में प्रति व्यक्ति जितना कार्बन उत्सर्जन किया जाता है वह अमेरिका के मुकाबले सात गुना कम है, लेकिन आबादी अधिक होने के कारण भारत की कुल हिस्सेदारी बढ़ जाती है। हमें इसे और कम करने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें अपने घर में बिजली की खपत को कम करना होगा। एकल उपयोग की वस्तुओं को अपनी दैनिक दिनचर्या से कम अथवा समाप्त करना होगा। घर के रेफ्रिजरेटर की रफ्तार धीमी रखें, सीएफएल बल्बों का उपयोग, वाशिंग मशीन का कम उपयोग, ऊर्जा खपत वाली सभी वस्तुओं का उपयोग सीमित करना होगा, वाहन के टायरों में हवा सही रखें, डिब्बाबंद उत्पादों से छुटकारा व ताजा खाना कुछ ऐसे उपाय हैं जिनसे हम अपना कार्बन फुटप्रिंट घटा सकते हैं। प्रत्येक परिवार अपने घरों की छतों को सफेद पेंट से रंगना सुनिश्चित करे, इससे सूर्य की पराबैंगनी किरणें छत से टकराकर वापस लौट जाती हैं इससे घरों को ठंडा रखने में मदद मिलेगी। प्रकृति अनुरूप घर बनाने की नीति पर जहां सरकार को अनिवार्य बनानी चाहिए वहीं बिल्डरों व नागरिकों को भी अपने घरों को प्रकृति के अनुरूप बनाना चाहिए। ऐसे घर जिनमें वर्षाजल को संरक्षित करने की व्यवस्था हो, सूर्य का समुचित प्रकाश उपलब्ध हो तथा वायु का संचार बना रहे। इससे बिजली की खपत भी स्वतः ही कम होगी।

कार्बन उत्सर्जन में सर्वाधिक योगदान कोयले का है। कोयले की खपत (उत्पादन व आयात) करने वाला भारत विश्व का दूसरा बड़ा देश है। वर्ष 2000 के मुकाबले कोयला उत्पादन में तीन गुणा की बढ़ोत्तरी हुई है। भारत में 80 प्रतिशत बिजली उत्पादन भी कोयले से किया जाता है। कोयला आधारित उद्योगों को अक्षय उर्जा में परिवर्तित करना होगा तथा ऊर्जा की खपत सरकारी व निजी स्तर पर कैसे कम हो इसके लिए सख्त नियम-कायदे बनाने होंगे। सरकार को सुनिश्चित करना होगा कि एक परिवार अधिकतम कितना कार्बन उत्सर्जन कर सकता है। इसी आधार पर अपनी नीतियों को अमल में लाना होगा। भारत द्वारा इंटरनेशनल सोलर एलाइंस के गठन में अग्रणी भूमिका निभाना व उस ओर अपने कदमों को मोड़ना भविष्य के लिए एक बेहतर कदम है।

अंधाधुंध भू-जल दोहन पर लगाम जरूरी

रमनकांत

वर्तमान समय में वर्ष 1952 के मुकाबले भारत में पानी की उपलब्धता एक तिहाई रह गई है, जबकि आबादी 36 करोड़ से बढ़कर 130 करोड़ के करीब पहुंच गई है। हालात ये हो गए हैं कि हम लगातार भूमिगत जल पर निर्भर होते जा रहे हैं। जिसके कारण भूमिगत जल प्रत्येक वर्ष औसतन एक फीट की दर से नीचे खिसक रहा है। इससे उत्तर भारत के ही करीब 15 करोड़ लोग भयंकर जल संकट से जूझ रहे हैं। धरती का सीना चीरकर लगातार पानी खींचने का ही परिणाम है कि आज देश के एक चौथाई ब्लॉक डार्क जोन में आ चुके हैं और यह संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। इस स्थिति से देश का कोई भी हिस्सा नहीं बच पाया है। उत्तर से लेकर दक्षिण और पूरब से लेकर पश्चिम तक हर जगह पानी को लेकर मारामारी है। देश में गांवों से लेकर कस्बों तथा छोटे से लेकर बड़े शहरों में पीने के पानी के लिए टैंकर व कैम्पर का चलन आम हो गया है। देश के कुछ हिस्सों में पानी के लिए कतारों में लगना भी अब लोगों की दिनचर्या का हिस्सा हो गया है। गांवों में तो स्थिति और भी बदतर हो गई है। पहले जो पानी औसतन पांच मिनट की दूरी पर उपलब्ध था। उसके लिए आज औसतन आधा घण्टे तक चलना पड़ता है। राजस्थान और गुजरात के गांवों में यह स्थिति प्रचुरता से देखी जा सकती है और दक्षिण भारत के राज्यों के कुछ हिस्से भी इसकी जद में हैं। नासा के सैटेलाइट ग्रेविटी रिकवरी एण्ड क्लामेट एक्सपेरीमेंट के अनुसार पंजाब, हरियाणा व राजस्थान में

हम जो कुछ भी उपयोग करते हैं उसकी समझ बनानी होगी कि वह कितने पानी के इस्तेमाल से बनी है और क्या उसके बगैर हमारा जीवन चल सकता है? अगर यह समझ देश बना ले और भू-जल दोहन के लिए उपयुक्त व कठोर कानून अमल में आ जाएं तो भविष्य पानीदार संभव है।

भू-जल भंडार तेजी से खाली हो रहे हैं। विश्व बैंक का आंकलन है कि अगले 25 सालों में दुनिया के 60 प्रतिशत भू-जल स्रोत खतरनाक स्थिति में पहुंच जाएंगे। यह स्थिति भारत के लिए इसलिए भी अधिक चिंता करने वाली है, क्योंकि हमारी करीब 70 प्रतिशत मांग भू-जल के स्रोतों से ही पूरी होती है। अगर ऐसा हुआ तो न फसल उगाने के लिए पानी होगा और न कल-कारखानों में सामान बनाने के लिए। कृषि और उद्योग धंधे तो बर्बाद होंगे ही, हमारी आबादी का एक बड़ा हिस्स पानी की बूंद-बूंद के लिए तरस जाएगा।

एक अनुमान के अनुसार पिछले दिनों देश में लगभग दो महीने चली तालाबंदी के चलते अरबों-खरबों लीटर पानी की बचत हुई। इसके पीछे समझ में आने वाले कारण भी स्पष्ट हैं। वह चाहे निजी व सार्वजनिक वाहनों पर खर्च होने वाला पानी हो या फिर रेलवे में तालाबंदी के दौरान यह पानी बचा रहा। जो उद्योग प्रतिदिन लाखों लीटर भू-जल खींचकर उपयोग में लाते थे, तालाबंदी से ऐसा नहीं हो पाया। इस दौरान प्रति व्यक्ति कम उपभोग के चलते भी पानी की बचत हुई, लेकिन ज्यों-ज्यों तालाबंदी को खोला गया वैसे ही भू-जल का उपभोग पहले ही तरह ही धीरे-

धीरे रफ़्तार पकड़ रहा है। यह पहले से ही स्पष्ट भी था कि तालाबंदी में भू-जल की बचत होना स्थाई नहीं है लेकिन इसने हमें यह सोचने पर अवश्य मजबूर किया है कि हमारे उपभोक्तावाद से भू-जल पर अनावश्यक दबाव पड़ रहा है।

जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार के नेशनल कमीशन फॉर इनटेगरेटिड वॉटर रिसोर्सिस डेवलेपमेंट प्लान व सेंटर फॉर साइंस एण्ड एन्वायरन्मेंट के अध्ययन के अनुसार उद्योग व उर्जा क्षेत्र में कुल भू-जल की मांग आज के करीब 7 प्रतिशत के मुकाबले वर्ष 2025 तक 8.5 प्रतिशत हो जाएगी जो वर्ष 2050 तक बढ़कर करीब 10.1 प्रतिशत हो जाएगी। ऐसे में सहज ही समझा जा सकता है कि भविष्य के लिए भू-जल बचाना कितना आवश्यक है? ऐसे में फिक्की की वह रिपोर्ट भी चिंता में डालने वाली है कि उद्योग पानी की कमी से जूझ रहे हैं। गौरतलब है कि कृषि क्षेत्र में भू-जल की मांग वर्ष 2010 के 77.3 प्रतिशत के मुकाबले वर्ष 2050 तक घटकर 70.9 प्रतिशत ही रह जाएगी अर्थात भविष्य में जहां उद्योग व ऊर्जा में पानी की मांग बढ़ेगी व वहीं सिंचाई में घटेगी।

पिछले पांच माह में दिल्ली व उसके निकट के राज्यों में करीब एक दर्जन बार भूकंप के हल्के व कम समय के लिए झटके महसूस किए जा चुके हैं। यह भू-जल दोहन का स्पष्ट संकेत है क्योंकि ज्यों-ज्यों जमीन के नीचे का पानी सूंता जा रहा है उससे नीचे के जल भंडार रीते हो रहे हैं। भू-जल के भंडारों के खाली होने के कारण जमीन के नीचे की टेक्टोनिक प्लेटस धीरे-धीरे खिसक रही हैं। अगर हालात ये ही रहे तो निकट भविष्य में बड़े भूकंप की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

भारत में भू-जल उपयोग के लिए कठोर कानूनों की आवश्यकता है, क्योंकि यहां सभी कुछ.बड़े शहरों को छोड़ दें तो तमाम देश में साफ-पीने वाला पानी ही प्रत्येक उपयोग में लाया जाता है। उद्योग से लेकर कृषि तक तथा पीने से लेकर फ्लश तक साफ पीने वाला पानी ही इस्तेमाल होता है। हमें अगर भू-जल को संरक्षित रखना है तो इस आदत को बदलना होगा। हमें सिंचाई, उद्योग व कुछ घरेलू कार्यों (पौधा लगाना, गाड़ी धोना, गमलों में व शौचालय आदि) में कस्बों व शहरों से निकलने वाले सीवेज को शोधित करके इस्तेमाल करना होगा तथा उद्योगों को पानी के पुनः इस्तेमाल के लिए मजबूर करना होगा। भू-जल बचाने व संरक्षित करने में प्रत्येक व्यक्ति को उपभोक्तावाद में कमी करनी होगी। हम जो कुछ भी उपयोग करते हैं उसकी समझ बनानी होगी कि वह कितने पानी के इस्तेमाल से बनी है और क्या उसके बगैर हमारा जीवन चल सकता है? अगर यह समझ देश बना ले और भू-जल दोहन के लिए उपयुक्त व कठोर कानून अमल में आ जाएं तो भविष्य पानीदार संभव है।

(लेखक भारतीय नदी परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं)

अंधाधुंध भू-जल दोहन पर लगाम जरूरी

रमनकांत

वर्तमान समय में वर्ष 1952 के मुकाबले भारत में पानी की उपलब्धता एक तिहाई रह गई है, जबकि आबादी 36 करोड़ से बढ़कर 130 करोड़ के करीब पहुंच गई है। हालात ये हो गए हैं कि हम लगातार भूमिगत जल पर निर्भर होते जा रहे हैं। जिसके कारण भूमिगत जल प्रत्येक वर्ष औसतन एक फीट की दर से नीचे खिसक रहा है। इससे उत्तर भारत के ही करीब 15

हम जो कुछ भी उपयोग करते हैं उसकी समझ बनानी होगी कि वह कितने पानी के इस्तेमाल से बनी है और क्या उसके बगैर हमारा जीवन चल सकता है? अगर यह समझ देश बना ले और भू-जल दोहन के लिए उपयुक्त व कठोर कानून अमल में आ जाएं तो भविष्य पानीदार संभव है।

भू-जल भंडार तेजी से खाली हो रहे हैं। विश्व बैंक का आंकलन है कि अगले 25 सालों में दुनिया के 60 प्रतिशत

व ऊर्जा में पानी की मांग बढ़ेगी व वहीं सिंचाई में घटेगी।

पिछले पांच माह में दिल्ली व उसके निकट के राज्यों में करीब एक दर्जन बार भूकंप के हल्के व कम समय के लिए झटके महसूस किए जा चुके हैं। यह भू-जल दोहन का स्पष्ट संकेत है क्योंकि ज्यों-ज्यों जमीन के नीचे का पानी सूंता जा रहा है उससे नीचे के जल भंडार रीते हो रहे हैं। भू-जल के भंडारों के खाली होने के कारण जमीन के नीचे की टेक्टोनिक प्लेटस धीरे-धीरे खिसक रही हैं। अगर हालात ये ही रहे तो निकट भविष्य में बड़े भूकंप की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

भारत में भू-जल उपयोग के लिए कठोर कानूनों की आवश्यकता है, क्योंकि यहां सभी कुछ.बड़े शहरों को

प्यास तो पहले भी थी आज कहीं पानी नहीं है

अमर उजाला फाउंडेशन का अभियान
सकल पर्यावरण उत्पाद

मनुस्मृति से लेकर कुरान, बाइबिल और वेदों में भी पानी को गंदा न करने और उसको संरक्षित करने पर जोर दिया गया है, लेकिन कहां मानते हैं हम अपने धर्मग्रंथों की बात?

रमन त्यागी

मेरठ जनपद पानी के मामले में आज कठिनाई के दौर में आ खड़ा हुआ है। एक अध्ययन के बाद 'पाणी घणो अनमोल' नामक एक रिपोर्ट सामने आई है, जो जनपद में लोगों के बढ़ते लालच व सूखे के फैलते जाल के संबंध में भविष्य के लिए आगाह करती दिखाई पड़ती है। जनपद के कुल क्षेत्रफल 2564 वर्ग किलोमीटर में 663 गांवों, कस्बों व शहर बसे हैं। इसमें राजस्व अभिलेखों के अनुसार कुल 3062 जौहड़ व तालाब होने का रिकॉर्ड मिलता है, लेकिन वर्तमान में मात्र 1944 जौहड़ और तालाब ही देखने को मिलते हैं। 1118 जौहड़ और तालाबों का नामोनिशान तक मौजूद नहीं है। अगर खसरा नम्बर से उनकी जानकारी करें तो पता चलता है कि मिट चुके 1118 जौहड़ व तालाबों पर कृषि का कार्य किया जा रहा है या फिर उन पर कंकरीट के जंगल खड़े कर दिए गए हैं। इन प्राकृतिक जल स्रोतों की स्थिति ऐसी तब है जब भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्ष 2001 में हिंचलाल तिवारी बनाम कमल देवी नामक मामले में साफ तौर पर कहा गया है कि किसी भी प्राकृतिक जल स्रोत पर अवैध रूप से कब्जा किया जाना दण्डनीय अपराध की श्रेणी में आता है। गौरतलब है कि अकेले मेरठ जनपद में ही निजी व सरकारी करीब 56000 हजार ट्यूबवेल मौजूद हैं जिनके माध्यम से सिंचाई हेतु भू-जल निकाला जाता है। जनपद की कुल कृषि भूमि 2,03,350 हेक्टेयर में सिंचाई के कार्य में करीब 85 प्रतिशत भू-जल का इस्तेमाल किया जाता है। जबकि मात्र 15 प्रतिशत पानी ही नहरों व अन्य माध्यमों से लिया जाता है। इसके अतिरिक्त हैण्डपम्प से हर घर के लिए कितना पानी रोजाना खींचा जाता होगा इसको बस आंकड़ों में ही समझा जा सकता है। भू-जल स्तर के लगातार नीचे खिसकने के कारण हालात यह बन चुके हैं कि अधिकतर हैण्डपम्प व ट्यूबवेल ठप्प हो चुके हैं। इनके विकल्प के रूप में सबमर्सीबल पम्प लगाए जा रहे हैं लेकिन अगर हालात यही रहे तो सबमर्सीबल के बाद क्या होगा? इस सवाल का जवाब भविष्य के गर्त में छिपा है। क्योंकि हम भू-जल में डाल कुछ भी नहीं रहे हैं उल्टे उससे भरपूर मात्रा में निकाल रहे हैं। या यूं कहें कि हमने लेन-देन के रिश्ते को गड़बड़ा दिया है। जौहड़ व तालाबों जैसा ही हाल कुओं का भी बना हुआ है। रिपोर्ट के अनुसार जनपद में कुल 2200 कुएं ही देखने को मिले, जिसमें से 1050 कुएं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौजूद हैं तथा मात्र 150 कुओं में ही पानी देखने को मिलता है।

हमें आज यह भी जान लेना आवश्यक है कि हमारे पूर्वजों की आखिर वह क्या सोच रही होगी कि उन्होंने इतने अधिक जल स्रोतों का निर्माण किया और क्यों किया? वे आज के वैज्ञानिकों से भी अधिक समझदार रहे होंगे जो उन्होंने निचले स्थानों पर तालाबों व जौहड़ों का निर्माण किया तथा ऊंचे स्थानों पर कुओं का। ऐसा इसलिए किया गया ताकि बहाव का पानी तालाबों में एकत्र हो जाए जिसका इस्तेमाल पशुओं को पानी पिलाने, नहलाने, धोबी घाट तथा सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जाता था तथा ऊंचे स्थानों पर कुओं का निर्माण इसलिए किया गया, ताकि इनमें गांव का गंदा पानी प्रवेश न करने पाए। एक बात और खास होती थी कि वर्षभर तालाब व कुओं का जल स्तर समान रहता था। तालाबों से मिट्टी निकालने की प्रथा प्रत्येक वर्ष अपनाई जाती थी, लेकिन आज पश्चिमी उत्तर प्रदेश के तमाम जिलों के जल स्रोतों के हालात कमोबेश समान हैं। बागपत, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद, हापुड़, गौतमबुद्धनगर, बिजनौर, सहारनपुर, बुलंदशहर, आगरा, अलीगढ़, मुरादाबाद व जेपी नगर आदि तमाम जनपदों के लाखों तालाब इंसानी लालच व सरकारी लापरवाही के चलते मिट चुके हैं।

मनुस्मृति से लेकर इसी प्रकार कुरान, बाइबिल व वेदों में भी पानी को गंदा न करने व उसको संरक्षित करने पर जोर दिया गया है। अमृतसर में मौजूद सिखों के धार्मिक स्थान स्वर्ण मन्दिर के ताल को प्रत्येक वर्ष सेवकों द्वारा साफ किया जाना व उस तालाब की मौजूदगी सिख धर्म में पानी के महत्व को अपने आप बयान कर देती है। अगर राजस्थान व बुंदेलखण्ड जैसे हालातों से महफूज रहना है तो हमें शीघ्र-अतिशीघ्र चेतना होगा तथा अपने जल स्रोतों को बचाना होगा।

(लेखक नीर फाउंडेशन के निदेशक हैं)